लोकमान्य
तिलक
...न्य तिलक
१.२ १२
२६६
हिन्दी पुस्तक एजेन्सी

लोकमान्य तिलक

धन्य धरम धुर धीरवर, लोकमान्य धीमान।
भारत माँके लाड़ले, जयति तिलक भगवान्॥

लेखक
श्री रमाकान्त त्रिपाठी 'प्रकाश'

प्रकाशक
हिन्दी पुस्तक एजेन्सी
ज्ञानवापी, बनारस।

द्वितीय बार] १९५२ [मूल्य ।=)

प्रकाशक
हिन्दी पुस्तक एजेन्सी
ज्ञानवापी, बनारस ।

शाखाएँ—
२०३, हरिसन रोड, कलकत्ता ।
बाँकीपुर, पटना ।

मुद्रक—
कृष्णगोपाल केडिया
वणिक प्रेस
साक्षीविनायक, बनारस ।

लोकमान्य बालगंगाधर तिलक

जातीय परिचय

लोकमान्य बालगंगाधर तिलकका जन्म एक कुलीन महाराष्ट्र ब्राह्मण कुलमें हुआ था। जिस प्रकार पहाड़ी ब्राह्मणोंमें 'पन्त' उपाधिके लोग होते हैं उसी प्रकार इनके वंशकी उपाधि भी 'पन्त' है, पर सब लोग नियमित रूपसे इस उपाधिका प्रयोग अपने नामके साथ नहीं करते। पेशवाओंके शासनकालमें 'मामलेदार' एक ऊँची पदवी थी। उसे कुछ गावोंका सर्वेसर्वा ही समझना चाहिए। तिलकजीके परपितामह (परदादा) केशवराव अञ्जन गांव महालके मामलेदार थे। पेशवा बाजीरावसे राज्य लेकर जब वर्तमान गोरी सरकार (बृटिश) ने अपना अधिकार जमाया तो इस नयी सरकारने भी केशवरावको मामलेदार बनाना चाहा था। पर स्वाभिमानी केशवरावने साफ इन्कार कर दिया कि 'मैं प्रत्येक शासनकी गुलामी करनेके लिए तैयार नहीं, पेशवा हमारे थे हम पेशवाके थे। जब हमारी सरकारके हाथसे शासनसत्ता गयी तो अब तुच्छ मामलेदारीकी मुझे कोई इच्छा नहीं।"

इसी तरह स्वाभिमान, सात्विकता और विद्या-प्रेमके लिए यह परिवार अबतक प्रसिद्ध है, लेकिन इस वंशको जो गौरव भगवान तिलकने प्रदान किया है वह आप ही जैसे अलौकिक प्रतिभाशाली महापुरुषका काम है।

आपके पिता गंगाधरजी पन्त रत्नागिरिकी एक पाठशालामें हेडमास्टर थे। उस समय आपको केवल ५) मासिक मिलता था। इसीमें संतुष्ट रहते हुए जिस लगन से आप अपने छात्रोंको पढ़ाते थे उससे पास पड़ोसमें ही नहीं अपितु अधिकारी वर्गमें भी आप आदरकी दृष्टिसे देखे जाते थे। गणित और व्याकरणमें तो आप शिक्षकवर्गमें विख्यात थे। यह सब कुछ होते हुए भी वंशपरम्पराकी आदतसे भी वे वञ्चित नहीं थे। स्वाभिमानके कारण आप किसीकी कभी चापलूसी नहीं करते थे। यही वजह थी कि लगातार एकही स्कूलमें बिना वृद्धिके १७ वर्षों तक रहे और बादके लोग तरक्की कर गये।

गंगाधरजीके अध्यापन कालमें सहायक अध्यापकोंके नाम एक प्रतिज्ञा पत्रपर हस्ताक्षर करनेके लिए पत्र आया जिसके अनुसार कोई भी अध्यापक नौकरी छोड़ नहीं सकता था। उस समय सहायक अध्यापक ३) मासिक

पाते। गङ्गाधरजीने प्रतिज्ञा पत्रपर हस्ताक्षर तो करवा लिये, किन्तु उसके साथ आपने जो वक्तव्य लिखकर भेजा उससे आपके स्वाभिमान और स्पष्टवादिताका अनुमान किया जा सकता है। आपने साफ लिख दिया था कि—अफ्रिकाके गुलामोंसे भी बदतर दशा इन शिक्षकोंकी है। इसका अनुमान इनके वेतन और इस प्रकारके प्रतिज्ञापत्रसे लगाया जा सकता है। कहना न होगा कि वहाँके क्षेत्रोंमें ऐसा स्पष्ट वक्तव्य और किसी प्रधानाध्यापकने नहीं दिया था। इसका अधिकारियोंपर प्रभाव भी अच्छा ही पड़ा था।

महाक्रान्तिकारी भगवान तिलकका जन्म उस दिन होता है, जब भारतकी ऐतिहासिक क्रान्ति गदर (सिपाही विद्रोह या स्वातन्त्र्य युद्ध) के फूट निकलनेमें सिर्फ एक वर्ष रह जाता था। अर्थात् जुलाई सन् १८५६ ई० में आपका जन्म हुआ। इस समय पिताजी भी तरक्की करके स्कूलोंके असिस्टेन्ट डिप्टी इन्स्पेक्टर हो गये थे।

बचपन और शिक्षा

तिलकजीके पिता पक्के सनातनधर्मी थे, उन्होंने

इनकी जन्मपत्री बनवा ली थी। ये अपने पिताके इकलौते बेटे थे, तथा ३ बहनें भी थीं, पर ये अपनी चपल बुद्धि और बाल सुलभ क्रीड़ासे सबको मुग्ध कर दिया करते थे। यद्यपि जन्मपत्रीके अनुसार इनके जीवनमें कोई ऐसी विशेष बात नहीं पायी जाती थी। लेकिन उन्होंने "लगन महूरत जोग बल, 'तुलसी' गनैं न काहि। राम भये जब दाहिने सबै दाहिने ताहि।" के सिद्धान्तपर अपने जीवन चरित्रसे मुहर लगा दी। बचपनसे ही दिनोंदिन उन्नति करते ही गये और ज्योतिषीजीको जैसे चुनौती दे दी हो कि देखें आपको जन्मपत्री हमारा क्या बिगाड़ लेती है।

इनके जन्म समयका नाम केशव और पुकारनेका नाम बलवंतराव तिलक पड़ा। 'तिलक' एक पदवी ही समझिए बचपनमें ये इतने तेज थे कि जिस विषयको इनके साथी हफ्तोंमें समझते उसे एक दो बारके साधारण अध्ययनसे समझ लेते थे।

इनकी प्रारम्भिक शिक्षा घरपर अपने सुयोग्य पिताजीके ही द्वारा हुई थी पिताजीकी लिखी हुई व्याकरण और गणितकी पुस्तकें स्कूलोंमें खूब चलती हैं। मराठीमें त्रिकोण मीमांसापर सबसे पहले इन्होंने ही पुस्तक लिखी

थी। इनकी गणित और व्याकरणकी विशेष योग्यताका पूरा प्रभाव तिलकजीपर पड़ा था।

स्मरणशक्ति तो इनकी इतनी तीव्र थी कि बचपनमें इन्हें सैकड़ों श्लोक मुखाग्र हो गये थे। इनके पिता एक श्लोकके याद कर लेनेपर इन्हें एक पाई देते थे। इस प्रकार पाइयोंके प्रलोभनमें आकर इन्होंने श्लोक रट कर २) पुरस्कारमें ले लिया। सारा परिवार इनकी इस चपल-बुद्धि पर मुग्ध था। इतना होनेपर ये लड़कपनसे ही बड़े हठी थे। जो मनमें ठान लेते थे कोई लाख रोके पर ये टससे मस नहीं होते थे। साथ ही इसके इनमें इस बात-की भी विशेषता थी कि किसी बातपर जिद पकड़नेके पहले यह उसकी सत्यंतापर विचार कर लेते। इनके निश्चयमें जो बात ठीक जँचती उसके विरुद्ध ये किसी हालतमें भी नहीं जाते थे।

अपनी हठधर्मीके कारण इन्हें कई बार हानि भी उठानी पड़ी थी। पर अन्तमें विजय सदैव इन्हींकी होती थी क्योंकि अनुचित हठ तो वे कभी करते ही नहीं थे। सदाचारके नामपर जो छात्र अपने गुरुजनोंकी अनुचित बातमें भी हाँ में हाँ मिला देते थे उनसे ये बहुत चिढ़ते

थे। अनुचितको ये अनुचित कहनेमें कभी भी नहीं चूकते थे चाहे भले ही इससे कोई अपना अपमान समझ ले।

एक बार प्राइमरी स्कूलमें इनके साथियोंने मूँगफली खाकर उसका छिलका कक्षामें ही फैला दिया। अध्यापक-की आज्ञासे सब लड़के छिलका उठाकर फेंक दिये। पर ये ज्यों-के-त्यों बैठे रहे। जब इस गुस्ताखीपर नाराज होते हुए अध्यापकने फिरसे इन्हें छिलका फेंकनेको कहा तो इन्होंने साफ कह दिया 'जब मैंने मूँगफली खायी नहीं तो क्यों फेंकू' गरम पड़ते ही ये बस्ता बाँधकर चले आये और कई दिनोंतक स्कूल न गये। आखिर अध्यापकने इनके पितासे पत्र लिखकर पूछा कि आपने 'बलवन्त' को मूंगफली तो नहीं खानेको दी थी। पिताजीके इन्कार कर देने और लड़कोंसे पूछनेके बाद अध्यापकने इन्हें फिर बड़े प्यारसे बुलाकर कक्षामें बैठाया और पीठ ठोकते हुए कहा—"तू एक दिन जरूर कोई बड़ा आदमी होगा, सत्यके आगे निर्भय होना इसका लक्षण है।" अध्यापककी भविष्यवाणी सार्थक हुई इसे कौन नहीं स्वीकार कर सकता।

इनके प्रथम शिक्षक श्री भीकाजीने इन्हें सर्व प्रथम सन् १८६१ ई० में स्कूलमें भरती किया था। पाठशाला

में ये अवसर खेल-कूदमें रहा करते थे। असली पढ़ाई तो इनकी घरमें पिताजी द्वारा होती थी। इनके साथियोंको इस बातसे बड़ा आश्चर्य होता कि इस खेलाड़ी और लापरवाह लड़केको अपना पाठ कब और कैसे याद हो जाता है? स्व० पं० मोतीलालजी नेहरूकी तरह ये भी जब जिस काममें जुट जाते थे पूरा करके ही छोड़ते थे। कई दिनोंका पिछड़ा पाठ एक दिनकी लगनसे की गयी पढ़ाईमें पूरा कर लेते थे। ऐसी तन्मयतासे पढ़ते कि पासमें ही बाजा बजता हो इन्हें सुनायी न पड़ता था।

आठवें वर्ष १८६४ ई० में इनका यज्ञोपवीत संस्कार बड़ी धूम-धामसे किया गया। इस समयतक ये धातु रूपावली, शब्द रूपावली, अमरकोश और गणित आदिकी बहुत कुछ जानकारी प्राप्त कर चुके थे। सन् १८६६ ई० में गंगाधरजी असिस्टेंट इन्सपेक्टरके स्थानपर पूना भेजे गये तो बलवन्तराव (लो० मा० तिलक) भी इनके साथ पूना गये। इन्हें यहाँ पढ़ाईकी अच्छी सुविधा मिली। महाराष्ट्र प्रांतमें शिक्षा सभ्यता एवं प्राचीन संस्कृतिमें पूनाका प्रमुख स्थान है। अब भी इन्हें पिताजीसे गणित, व्याकरण और संस्कृत-शिक्षामें पूरी सहायता मिलती थी। स्कूलमें

अध्यापकोंसे इनकी प्रायः खटक जाया करती थी। बलवन्त रावको माता पिताका प्यार बहुत दिनोंतक न प्राप्त हो सका। १० वर्षकी उम्रमें इनकी माताजीका स्वर्गवास हो गया था और पूना आनेके ५-६ वर्ष बाद सन् १८८२ ई० में पिता गंगाधरजीका भी स्वर्गवास हो गया।

माताजीकी मृत्युके पश्चात् इनकी चाचीने बहुत प्यारसे इनका पालन पोषण करने लगीं। इनके काका गोविन्द-राव भी इन्हें बहुत प्यार करते थे। शायद प्यारके कारण ही इनमें हठ पकड़ लेनेकी आदत पड़ गयी थी। पिताकी मृत्युके समयतक इन्हें गणित और संस्कृतका अच्छा ज्ञान हो गया था। ये न केवल संस्कृतके श्लोकोंका अर्थ ही लगा लेते थे बल्कि सरल श्लोकोंमें कविता भी बना लिया करते थे। छात्र जीवनकी संस्कृत कविताओंका एक संकलन प्रकाशित हो चुका है।

माता-पिताकी मृत्युपर पढ़ाई-लिखाईमें त्रुटियाँ आ जाया करती हैं किन्तु इनकी पढ़ाईमें कोई अड़चन न पड़ी। इधर घरकी आर्थिक स्थिति भी सुधर चुकी थी, उधर काका गोविन्दरावजीकी भी यही इच्छा थी कि बलवन्त ऊंची शिक्षा प्राप्त कर वंशका नाम अमर करे।

सन् १८७२ ई० में मैट्रिक पास करके डेक्कन कालेजमें नाम लिखाया। इसी बीचमें स्वास्थ्य खराब हो जानेसे, पढ़ना लिखना छोड़कर स्वास्थ्य सुधारनेकी ओर ध्यान दिया। फिर तो कालेज जाते और हाजिर देकर कक्षासे बाहर हो जाते। एक बार इनके अध्यापकने इनसे छुट्टीके पहले कक्षा छोड़कर चले जानेका कारण पूछा तो इन्होंने उत्तर दिया—"इस वर्ष पढ़ाईकी परीक्षा न देकर स्वास्थ्य-की परीक्षा देनी है।"

विद्यार्थी बलवन्त जिस तरफ ध्यान देते सफलता इनके चरणोंपर लोटती थी, चलने लगी बैठक-पर-बैठक, जहाँ पहले दिन २४ बैठकमें थक गये थे वहाँ अब ८०० बैठक और ८०० डण्ड रोज करने लगे। इसके अलावा मुग्दर भाँजना, कुश्ती लड़ना और तैरना भी इनका प्रधान काम था। तैरनेमें तो इतने अभ्यस्त थे कि अधेड़ अव-स्थामें काशीजीकी यात्रा करते समय एक दिन भादोंकी बढ़ी हुई गङ्गामें ५ साथियों सहित कूद पड़े थे। सबसे पहले और अधिक सीधी रेखामें यही तैरकर पार हुये थे। कुछ तो थोड़ी दूर जाकर वापस आ गये थे। ये जहाँसे गङ्गा-जीमें कूदे थे उससे सिर्फ २५ फुट तिरछेपर उस पार लगे

थे। अपनी इच्छासे ही एफ० ए० परीक्षामें फेल हो गये।

साहित्य और गणित तो इनका प्रिय विषय था ही। प्रायः देखा यह जाता है कि जो साहित्यमें तेज होते हैं उनका गणित अच्छा नहीं होता, पर बलवन्त इसके अपवाद थे। इनके गणितके शिक्षक एक अंग्रेज थे। कभी-कभी किसी जटिल प्रश्नपर वे कल बतानेका बहाना कर दिया करते थे। कलके पहले ही बलवन्त उस प्रश्नको श्यामपट्टपर हल करके छोड़ दिया करते थे। जब प्रोफेसर साहबको इनकी गणितकी विशेष योग्यताका पता चला तो वे भी इनका लोहा मानने लगे। फिर जब कभी किसी जटिल प्रश्नसे पाला पड़ जाता तो वे छात्रोंसे कह देते कि बलवन्तसे समझ लो।

यहाँपर बलवन्तकी साहित्यिक योग्यताका भी एक-दो उदाहरण दे देना आवश्यक है। एक बार इनके अध्यापकने डिक्टेशन लिखाया। इन्होंने 'सन्त' को तीन जगह तीन प्रकारसे लिखा, 'संत,' 'सन्‌त' 'सन्त'। यद्यपि व्याकरणसे तीनों रूप ठीक हैं, किन्तु अध्यापकने 'सन्त' को ही ठीक किया। फिर क्या था सब शुद्ध कर देनेके लिए ये लड़ पड़े। बड़ी हुज्जतके बाद जीत इन्हींकी हुई।

एक बार संस्कृतके अध्यापकने सब छात्रोंको नैषध-काव्यका अनुवाद लिखाया। पर इन्होंने लिखा ही नहीं। कई दिनों बाद जब अध्यापकको यह बात मालूम हुई तो उन्होंने न लिखनेका कारण पूछा तो आपने स्पष्ट उत्तर दे दिया—"दूसरोंके अनुवादके सहारेपर रहना मैं नहीं पसन्द करता। मैं खुद अनुवाद कर सकता हूँ।" यहाँ भी अध्यापकसे काफी तू तू, मैं मैं हुई और अन्तमें मामला प्रधानाध्यापक तक पहुँचा। प्रधानाध्यापक एक अनुशासन-प्रिय अंग्रेज था। उसने बलवन्तसे साफ कह दिया कि या तो तुम कालेज छोड़ दो या दण्ड मंजूर करो। इन्होंने उसी वक्त कालेज छोड़ दिया। एक वर्षका समय बर्बाद गया पर अपनी टेकसे न हटे। जब दूसरा अध्यापक आया तब फिर भरती हुए।

अध्यापकों और गुरुजनोंसे लड़ पड़ना और बात बातमें हठकर बैठना उचित नहीं, लेकिन जहाँ सत्यपर आघात पहुँचता हो वहाँ सत्यको दबाकर किसीकी बात यदि स्वीकार की जाती है तो उसे ही आत्मपतन कहते हैं, भारतीयोंने आत्मपतनसे ही अपना सब कुछ खो दिया। बलवन्तराव जबसे होश सँभाला तबसे ही ये सत्याग्रही बन गये थे।

नकी पाठ्य पुस्तकोंमें अंग्रेजीका एक उपन्यास भी था। उसका एकव्लएट नामक पात्र चरित्रका तो बहुत ही पवित्र था पर उजड्डता और किसी छोटे बड़ेका ध्यान न रखना, मनमानी घरजानी करना उस पात्रका स्वभाव था, हमारे चरित्रनायकका स्वभाव भी उसी पात्रसे मिलता जुलता था, इससे साथियोंने इनका नाम व्लएट रख लिया था। वह व्लएट नाम उस समय इतना छात्रोंमें प्रचलित हो गया था कि ये इस नामसे सम्बोधित करने-पर बोल भी दिया करते थे।

जहाँ स्वास्थ्य सुधार और कालेज छोड़नेके कारण इनका समय वर्बाद हुआ था वहाँ जब पढ़ाईकी तरफ जुट पड़े तो दो वर्षोंमें तीन कक्षाओंको पार कर दिया। सन् १८७६ ई० में बी० ए० गणित लेकर पास किया और सन् १८७९ ई० में वकालतकी परीक्षा पास की। एम० ए० में भी दो बार बैठे थे पर कृत्कार्य न हो सके। पढ़ाईसे चित्त उचट चुका था, सार्वजनिक जीवन-में प्रवेश करनेके लिये हृदय उत्साहित हो रहा था।

सन् १८७१ ई० में इनका विवाह हो गया था। इनकी धर्मपत्नीका नाम सत्यभामा देवी था। मैकेमें लोग

इन्हें ताईबाई कहा करते थे। उस समय गुरुजनोंकी इच्छा-से विद्यार्थी जीवनमें ही इनका विवाह हो गया था, पर ये वास्तवमें बाल-विवाहके कट्टर विरोधी थे। जब अपने ऊपर परिवारका भार आया तो इन्होंने अपनी पुत्रियोंका विवाह बड़ी उम्रमें किया था। ये प्राचीन संस्कृतिके भक्त थे, पर लकीरके फकीर नहीं थे। कालेज जीवनमें अंग्रेजी देवीकी बदौलत जब कि लड़कोंमें नास्तिकता फैल रही थी, भारतीय सभ्यताका मजाक उड़ाया जा रहा था तब ये भारतीय भेषभूषामें ही रहा करते थे और ईश्वरपर पूर्ण श्रद्धा रखते थे। कृष्ण भगवान तो इनके आराध्यदेव थे। इनका कहना था कि अंग्रेजी शिक्षा और उनके गुणोंको हमें अपनाना चाहिये पर अपनी संस्कृति और सभ्यताको खोकर यदि हम अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करेंगे तब हम न तो भारतीय रह जायंगे न हममें भारतीयता रह जायगी। तब तो हम अपना सब कुछ खो देंगे। यदि भारतके सभी छात्र लोकमान्य तिलककी नीतिको मानते हुए शिक्षा प्राप्त करते तो आज भारतका कुछ और ही नकशा होता।

विद्यार्थी जीवनमें लोकमान्यकी एक विशेषता यह थी कि इन्होंने कक्षामें प्रथम आनेके विचारसे कभी भी

अध्ययन नहीं किया। जब ये समझ लेते थे कि पास होने भरकी तैयारी हो गयी है तब ये दूसरे कामोंकी ओर झुक जाया करते थे। दीन-दुखियोंकी सेवा सहायताकी आदत बचपनसे ही पड़ गयी थी। अस्तु, इनके पास कामकी कमी न रहती थी।

सार्वजनिक जीवन

बलवन्तने वकालतकी भी परीक्षा पास कर ली, किन्तु वकालतकी तरफ इनका ध्यान न गया। यहींसे इनका सार्वजनिक जीवन आरम्भ होता है, अस्तु हम भी यहींसे बलवन्त नाम छोड़कर लोकमान्य तिलक नामका उपयोग करेंगे। यदि लोकमान्य चाहते तो वकालत करके घरमें रुपयोंकी ढेरियाँ लगा देते और तब ये भी अनेक धनिकोंमें एक अवश्य गिने जाते, पर लोकमान्य तिलक और भगवान तिलक न हो सकते और भारतकी जो अनवरत सेवा इनसे हुई है न हो सकती।

जिस समय लोकमान्य तिलक अध्ययन करते थे उस समय महाराष्ट्र प्रांतके प्रख्यात विद्वान श्री विष्णु शास्त्री चिपलूणकरजी सरकारी नौकर थे, पर उनके हृदयमें भी स्वदेशाभिमान कूट-कूट कर भरा था। लोकमान्यपर इनकी

विशेष कृपा रहती थी। यहाँतक कि इन्होंने एक राष्ट्रीय स्कूल खोलनेका निश्चय कर लिया था और छात्रावस्थामें ही लोकमान्यकी प्रतिभापर मुग्ध हो गये थे। चिपलूणकर-जीने लोकमान्यसे वचन ले लिया था कि पढ़ाई समाप्त करनेके पश्चात् वे उनकी राष्ट्रीय शिक्षण संस्थामें अध्यापन-का कार्य करेंगे।

तिलकजीके कितने सहपाठी वकालत करने लग गये थे। वे रुपयोंसे घर भर रहे थे, पर लोकमान्यको लक्ष्मीकी खनखनाहटकी मधुर ध्वनि मुग्ध न कर सकी। यह कोई साधारण त्याग न था। अपने सभी साथियोंसे ये कुशाग्र बुद्धि और तार्किक थे। एक अच्छे वकीलके यही लक्षण हैं, पर इन्होंने अध्यापिकी करनेका ही निश्चय किया।

चिपलूणकरजीने नये स्कूलका उद्घाटन पहली जन-वरी सन् १८८० ई० को किया, पूर्व वचनदानके कारण इन्होंने बड़ी प्रसन्नतासे इस स्कूलका अध्यापक होना स्वीकार कर लिया। पहले तो इस स्कूलमें केवल १८ ही छात्र भरती हुए थे, पर लोकमान्यकी शिक्षा-प्रणाली ही ऐसी आकर्षक थी कि छात्रोंकी संख्या दिनोंदिन बढ़ने लगी। सालभरमें ही १५० छात्र हो गये। इसी बीचमें

उस समयके प्रसिद्ध विद्वान श्रीआगरकरजी भी एम०ए० करके इसी राष्ट्रीयविद्यालयमें सहयोग देने लग गये। जिस स्कूलके खोलनेके पहले लोगोंने घोर विरोध किया था। कितने ही लोग इसकी योजनाको शेखचिल्लीकी बहक कहा करते थे। उसी विद्यालयमें देखते ही देखते सन् १८८४ ई० में १००६ छात्र हो गये और इस विद्यालय-की गणना ऊँचे विद्यालयोंमें की जाने लगी।

इस विद्यालयकी कीर्ति-कौमुदी न केवल पूनातक ही सीमित रही, बल्कि महाराष्ट्र प्रांत और भारतवर्ष भरमें इसका नाम हो गया। इसका परीक्षा-फल बहुत अच्छा हुआ करता था, जिससे दूसरे प्रांतों और शहरोंके छात्र आ आकर इसमें भरती होने लगे। स्कूलकी दिनोंदिन उन्नति होने लगी। कहनेको तो यह एक स्कूल था। कई दृष्टियोंसे कालेजोंकी समता कर सकता था।

दुर्भाग्यवश श्रीविष्णुशास्त्री चिपलूणकरजीका सन् १८८२ ई० में देहान्त हो गया। इनके देहान्तके बाद विद्यालयका सारा भार तिलकजीपर आ पड़ा, तिकलजी एक कर्मवीर पुरुष थे, उन्होंने अपनी प्रबन्ध-निपुणता और

शिक्षण योग्यताका पूरा परिचय दिया। विद्यालयकी उन्नति ही होती गयी, कोई त्रुटि न हुई।

विद्ययालयकी पूर्ण उन्नतिसे संतुष्ट होकर तिलकजी एक कालेजकी स्थापनाका विचार करने लगे। इसके लिए इन्होंने कई बार प्रयास किया, पर परिस्थितियोंकी प्रति-कूलताके कारण इन्हें सफलता न मिल सकी। सफलता न मिलनेपर हताश होकर बैठ जानेवाले व्यक्ति थोड़े ही थे। कुछ लोग 'कार्यं न सिद्ध्यति कोऽत्रदोषः' का अर्थ लगाते हैं कि कोशिश करनेपर भी यदि कार्यकी सिद्धि न हुई तो अब हमारा क्या दोष ? यह प्रारब्ध (भाग्य) का दोष है। पर लोकमान्य इसका अर्थ लगाते थे कि यदि कार्यकी सिद्धि नहीं हुई तो यहाँ दोष क्या है, अर्थात् किस त्रुटिके कारण कार्य्यमें असफलता हुई। उस त्रुटिको दूर करके वे सफलताकी ओर कदम बढ़ाते थे।

इसी प्रकारकी एक चौपाई तुलसीकृत रामायणमें आती है "सकल पदारथ हैं जग मांहीं, करमहीन नर पावत नाहीं।" इसका भी अर्थ भाग्यवादी यही लगाया करते हैं कि संसारमें सब पदार्थ मौजूद हैं, पर अभागे कर्महीन मनुष्य उनको नहीं प्राप्त कर सकते। ऐसा अर्थ

आलसियोंके लिये ही शोभा देता है, लोकमान्य तिलक जैसे कर्मवीर तो इसका अर्थ यही लगायेंगे कि संसारमें सब पदार्थ मौजूद हैं, पर कर्म-हीन (बिना काम किये) कुछ भी नहीं प्राप्त कर सकते। वस्तुतः यही अर्थ ठीक भी है, उनके चरित्रमें सर्वत्र इसी अर्थकी छाप मिलती है।

बार-बार असफल होकर भी सन् १८८५ ई० में फरग्यूसन कालेजकी स्थापना हुई। कालेजकी स्थापनाका अधिकांश श्रेय लोकमान्यको ही प्राप्त हुआ। उन्होंने पूर्वोक्त स्कूल और इस फरग्यूसन कालेजकी स्थापनामें इसीलिये इतना योगदान दिया था कि इन राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थाओं द्वारा छात्रोंमें राष्ट्रीय भाव भरे जायँ, और आगे चलकर इनसे पूरी देश-सेवाकी आशा की जाय। इनका यह संकल्प भी पूरा हुआ। आज भी इन संस्थाओं-से एक-से-एक देशभक्त पैदा हो रहे हैं।

इस फरग्यूसन कालेजमें तिलकजी गणितकी शिक्षा दिया करते थे, कभी-कभी संस्कृत भी पढ़ाया करते थे। इनके पढ़ानेका ढंग ऐसा कलापूर्ण था कि छात्र बहुत प्रभावित होते थे और इनके बताये गये प्रश्नोंके हल बड़ी आसानीसे हृदयंगम कर लेते थे।

पत्र-प्रकाशन

तिलकजी शिक्षादानसे ही संतोष करनेवाले न थे, वे देशमें नव जागरण लानेके लिए व्याख्यानों, मेलों और लेखों द्वारा प्रचार करनेमें भी व्यस्त रहा करते थे। इसी विचारको कार्यरूपमें परिणत करनेके लिये इन्होंने अपने कुछ मित्रोंके सहयोगसे पत्र-प्रकाशनका निश्चय किया। पत्र प्रकाशित करनेके पहले इन्हें एक प्रेसकी जरूरत पड़ी। जो लोग दूसरोंके प्रेसमें छपाई देकर पत्र निकालते हैं उन्हें बड़ी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है और खर्च भी कुछ अधिक ही पड़ जाता है, लोकमान्य इन बातोंसे परिचित थे। एक पुराना प्रेस बिक रहा था। आपसमें मिल मिलाकर २०००) में प्रेस खरीद लिया।

यहांपर यह भी बता देना आवश्यक है कि नक़दमें ये कुछ ही रुपये दे पाये थे। बड़ी कोशिश करनेपर भी २०००) पूरे न हो सके थे। कहाँ आगे चलकर आप जो चाहते एक जबान हिलानेसे प्राप्त कर सकते थे और देशके लिये आपने किया भी बहुत कुछ। स्वर्गवासके बाद आपके नामसे तिलक स्वराज्य फण्ड एक करोड़ रुपयोंका खोला गया था। एक अपीलपर ही भगवान तिलकके नामपर

१ करोड़ ५ लाख रुपये कुछ ही दिनोंमें एकत्र हो गये थे, कहां आरम्भिक जीवनमें २०००) का प्रबंध कई आदमी मिल करके भी न कर पाये थे। प्रेस किस्तपर मिल गया था। किसी उर्दू के कविने क्या खूब कहा है—

"सुर्खरू होता है ईंसा आफतें आनेके बाद।
रंग लाती है हिना पत्थर पर घिस जानेके बाद॥"

प्रेसकी व्यवस्था हो जानेपर तिलकजीका मित्र-मंडल बहुत उत्साहित हुआ। तिलकजी स्वयं रातभर प्रेसका सामान ढोनेमें व्यस्त रहे।

जहाँपर प्रेस स्थापित किया गया था, उस स्थानको लोग मोरवादादाका वाड़ा कहते हैं। आगे चलकर इसी स्थानपर आपका नया स्कूल भी खुला था। प्रेसके काममें तिलकजीको बड़ी दिलचस्पी रहती थी। लेखन, सम्पादन, प्रूफरीडरीसे लेकर कम्पोज और मशीन चलाने तकका आपने अनुभव कर लिया था। यहांतक कि मशीनोंको खोलकर फिट कर लेना इनके लिए एक साधारण बात थी, जिसे मशीनमैन लोग एक बहुत बड़ा काम समझते हैं। यह बात सच भी है कि जबतक किसी काममें पूरी दिलचस्पी न ली जाय और उस कामकी तह तक न पहुँच

लिया जाय तबतक उस काममें सफलता प्राप्त करना मुश्किल रहता है।

पहले 'केसरी' पत्रका प्रकाशन आरम्भ हुआ। इस पत्रके आदर्शपर जो संस्कृत छन्द और मराठी भाषामें दो पंक्तियोंकी कविता लिखी गई है वैसी ओजस्विनी कवितायें बहुत कम दिखायी पड़ती हैं। सिंहके प्रति बड़े ही ओजस्वी शब्दोंमें उसके कर्त्तव्योंको याद दिलाते हुए जो कुछ कहा गया है वह भारत और भारतवासियोंके लिए अन्योक्तिमें एक ललकार है।

पहले तो केसरीमें तिलकजी, पिचलूणकरजी और आगकरजी लिखा करते थे। तिलकजीके राजनीतिक और कानून सम्बन्धी लेखोंको पढ़कर इनके विरोधी भी दंग रह जाते थे और उनके मुँहसे भी प्रशंसात्मक शब्द निकल पड़ते थे। इसके अलावा आपके धार्मिक लेख भी बहुत ही तर्कपूर्ण होते थे। आपके लेखोंका पाठकों-पर इतना प्रभाव पड़ता था कि जो एक बार आपका लेख पढ़ लेता वह अवश्य ही ग्राहक हो जाता। धनाभाव के कारण वाचनालयोंसे काम निकालता पर पढ़े बिना रह न सकता था।

इस पत्रकी ३ वर्षोंमें साढ़े चार हजार ग्राहक संख्या हो गयी। इसके पहले किसी भी पत्रको इतनी सफलता प्राप्त न हो सकी थी। पत्रोंके लिये तो वह प्रारम्भिक काल था ही। आगे चलकर तो केसरीने भारतवर्षके सब पत्रोंको पछाड़ दिया। लोग कहते हैं इसकी ग्राहक संख्या ५०००० तक पहुँच चुकी थी। यद्यपि इस समय केसरीकी यह स्थिति नहीं है तिसपर भी केसरी देशके प्रमुख पत्रोंमें अपना विशिष्ट स्थान रखता है। यह अपनी निर्भीक टिप्पणियोंके लिये अब भी लब्धप्रतिष्ठ है।

केसरीका काम-धाम जब ठिकानेसे चलने लगा तो २ जनवरी सन् १८८१ ई० में मराठा पत्रका प्रकाशन आरम्भ किया गया। मराठा भी खरे लेखोंके लिये अपने नामको सार्थक करता था। ये दोनों पत्र अब भी चल रहे हैं और इनकी नीति अब भी बहुत कुछ पूर्ववत् ही है। साथियोंसे मतभेद हो जानेपर भी प्रेसमें कमी नहीं आयी थी, किन्तु कुछ दिनों बाद मत-भेदके ही कारण साथियोंसे सम्बन्ध हटा स्वयं अधिकारमें दोनों पत्रोंको कर लिया।

तिलकजी प्रेस, पत्र या स्कूल कालेजके पीछे जो इस प्रकार परेशान रहा करते थे, उसका यह मतलब कदापि

न लगाना चाहिये कि इससे उनकी जीविका चलती थी। जीविका चलानेके लिए यदि ये वकालत ही करना चाहते तो कुछ आमदनीका रास्ता न था, फिर थोड़ेसे रुपयोंपर अध्यापकी करना या पत्र निकाल कर अपनेको अनेक प्रकारकी उलझनोंमें फँसाते रहनेका एकमात्र उद्देश्य था निष्काम राष्ट्र-सेवा। रही बात वेतनकी, सो तो किसी न किसी रूपमें दैनिक आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए कुछ-न-कुछ रुपये चाहिये ही, इसीकी पूर्तिके लिए वे नाममात्रको वेतन ले लिया करते थे।

यहाँपर उनकी इस प्रकारकी निष्काम सेवाका एक उदाहरण दिया जा रहा है, जिससे हमारे कथनकी पुष्टि होती है। एक बार स्व०सर शिवाजीराव होल्कर पूना गये आपने वहांके नामी-नामी विद्वानोंको बुलाकर सम्मान किया था और भेंट-पूजासे ब्राह्मण विद्वानोंके प्रति आदर प्रदर्शित किया था। लोकमान्य तिलककी विद्वतासे होल्कर महाराज खूब परिचित थे। उन्हें मानते भी खूब थे। उन्हें भी ३५०) रुपये भेंट स्वरूप दिये गये। न्यायतः ये रुपये इन्हींके थे। ये इसे अपने घरू-कामोंमें खर्चकर सकते थे, पर इन्होंने इस रकमको भी अपनी सोसायटीको दे दिया

था। कुछ लोग तो उनके इसी कामसे नाराज हो गये थे, क्योंकि वे अपने रुपये सोसायटीको न दे सके थे।

मतभेदोंके कारण तिलकजीने ११ वर्षोंतक लगातार सोसायटीकी सेवा करनेके बाद त्याग पत्र दे दिया। यह त्यागपत्र उन्होंने ८० पृष्ठोंका लिखा था। जिस संस्थाको जन्म देकर अपने रक्तसे बढ़ाया उसे छोड़नेपर इन्हें कितनी मार्मिक-व्यथा हुई होगी, इसका अनुमान करना आसान नहीं है। अध्यापकीमें आपकी सेवाका क्षेत्र सीमित था, अब आपका कार्यक्षेत्र और विस्तृत हो गया।

प्रथम जेलयात्रा

तिलकजी अपने सम्पादन कालमें अपनी दृष्टि चतुर्दिक बनाये रखते थे। राजनीतिमें, समाजमें, धर्ममें और संस्थाओंमें जहाँ कहीं भी उन्हें विच्छृंखलता या अन्याय दिखायी पड़ता उसकी निर्भीकताके साथ टीका-टिप्पणी किया करते थे। जब 'केसरी' के लेख और टीका टिप्पणियोंको लोग बड़ी उत्सुकतासे पढ़ने लग गये थे और उसकी धाक जम गयी थी उन्हीं दिनों महाराजा गायकवाड़ (बड़ौदा) श्री मल्हाररावजी अंग्रेजी सरकारकी कृपासे गद्दीसे उतारे गये थे। उन्होंने महाराज सयाजी-

रावको गोद ले रखा था। यद्यपि मल्हाररावजी गायकवाड़के दत्तक पुत्र श्री सयाजीराव सिंहासनारूढ़ कर दिये गये थे, पर इन्हें नाममात्रको गद्दी मिली थी। राज्यका सारा कार्यभार दीवान सर टी माधवरावके हाथमें था। ये महाशय दीवानीके कलामें प्रवीण थे। ट्रावनकोर राज्यमें भी पहले ये दीवान रह चुके थे। वहाँपर इनकी प्रबन्ध निपुणता प्रसिद्ध हो चुकी थी।

बड़ौदामें जबसे इन्होंने कार्यभार सँभाला, तबसे ही प्रजा इनसे अप्रसन्न रहने लगी थी। बात यह थी कि बड़ौदा राज्यपर उस समय अंग्रेजी राज्यकी वक्रदृष्टि थी कि किसी प्रकार राज्यको अपने हाथोंकी कठपुतली बनाया जाय। ब्रिटिश सरकारकी इस राजनीतिकी उसके शत्रु भी प्रशंसा करेंगे कि या तो सरकारने जीत करके अपना ही राज्य स्थिर किया या उसे राजाके नामपर जीने दिया उसे अपने हाथकी कठपुतली ही बनाकर जीने दिया। इस नीतिका प्रभाव यहाँतक पड़ता है कि प्रजा कभी-कभी अंग्रेजी सरकारपर नाराज भी हो जाती है। इस समय प्रजा और उसके नेताओंमें स्वराज्य प्राप्त करनेकी कैसी लगन लगी है? पर देशी रजवाड़ोंपर तो ऐसी जादूकी

लकड़ी सरकारने फेर दी है कि अपने माई-बाप समझकर गोरी सरकारके इशारेपर नाचना अपना धर्म समझते हैं। इसमें उन्हें आराम भी है। न शत्रु का खटका है, न युद्ध-का झंझट। प्रजारूपी घासकी हरियाली बनी ही रहती है और ये चैत, बैसाख क्या बारहों महीने चरते रहते हैं और मोटे पड़ जाते हैं।

कहना न होगा कि सर टी माधवरावकी दीवानी और अंग्रेजी-राजकी देख-रेख और उसकी पल्टनको जिसे सरकारने रक्षा और प्रबन्धके नामपर बड़ौदाकी छातीपर लाद दिया था, प्रजाके बिलकुल पसन्द न करने पर भी सर टी माधवराव ब्रिटिश सरकारके लिए उस समय पुरोहितका काम कर रहे थे और सरकार अपने शुभ-संकल्पको इनके सहयोगसे सार्थक कर रही थी।

अंग्रेजी सेना और नये प्रबन्धके कारण राज्यको बहुत क्षतिग्रस्त होना पड़ा, इन बातोंपर स्वार्थान्ध सरकार ध्यान नहीं दिया सर टी माधवराव और अंग्रेजी सरकारकी 'केसरी' में खूब टीका-टिप्पणी की गयी। जिससे सरकार चिढ़ गयी। सरकारकी निगाह तिलकपर भी गड़ गयी।

बड़ौदासे भी गयी बीती दशा उस समय कोल्हापुर

राज्यकी हो रही थी। वहाँके तत्सामयिक महाराजा शिवाजीरावके पागल होनेकी चर्चा फैल रही थी। इससे प्रजा बहुत दुःखी हो रही थी। शिवाजीराव अपनी प्रजाके साथ पुत्रवत् व्यवहार करते थे। वे उदार, धार्मिक और कर्तव्यनिष्ठ राजा थे। प्रजामें यह अफवाह भी गर्म थी कि दीवान रायबहादुर माधवराव बर्वेने ही अपने षड्यंत्रसे महाराजको पागल बनानेकी कोशिश की है। कुछ भी हो उधर बड़ौदाके दीवान टी माधवराव दोनों हाथसे धनपर हाथ साफ करते हुए सरकारकी हाँ-में-हाँ मिला रहे थे। इधर कोल्हापुरके रायबहादुर माधवराव बर्वे भी अपनी दीवानशाहीका रंग उसी तरहसे बल्कि अपने नामराशि टी माधवरासे भी अधिक गहरा जमा रहे थे।

अंग्रेजीके कितने ही पत्र महाराजको विलायत जानेकी राय देते थे, गोया विलायत हीके जलवायुमें कोई ऐसा अमृतगुण है कि कोई भी बीमारी क्यों न हो दूर हो जाती है। चूंकि भूतपूर्व महाराजा राजारामजी विलायत यात्रामें ही इटलीमें मर चुके थे, इसलिए प्रजा इस प्रस्तावसे सहमत न थी। 'केसरी' ने अपने नामको सार्थक करते हुए दीवान माधवराव बर्वेकी खूब खबर ली। ऐसी फब्तियाँ

कसी कि वे क्रोधसे तिलमिला उठे। इनकी स्वार्थनीतिकी अन्य पत्रोंने भी कटु-आलोचनाएँ की थीं। इन आलोचनाओंका इतना प्रभाव पड़ा कि चारों तरफ इनकी बदनामी होने लगी। माधवराव मुकदमा चलानेके लिये पूना आ धमके। सरकारने सम्पादक, मुद्रक और प्रकाशक पर अभियोग चलानेकी तत्काल आज्ञा दे दी।

माधवरावने अपने कई आलोचक पत्रोंपर मुकदमा चलाया। मुकदमामें पत्रकी बरबादी अथवा कमजोरीसे सब पत्रकारोंने क्षमायाचना कर ली। पर केसरीके यशस्वी सम्पादक तिलकजीकी घुट्टीमें ही क्षमायाचना न पड़ी थी। इनके मुकदमेकी पैरवी सर फिरोजशाह मेहताने की थी। तिलक भी चाहते तो क्षमा मांगकर मुक्त हो सकते थे। मुकदमेमें इसके लिए काफी गुंजाइश थी। अधिकांश लेख उनके लिखे हुए नहीं थे, पर सबका दायित्व अपने ऊपर लिया। जब दिल खोलकर अन्यायके विरुद्ध आये तो कटु परिणामसे क्यों पिछड़ने लगे। इन्हीं कटु परिमाणोंने भगवान तिलकको निखार दिया।

लाख पैरवी करनेपर भी २६ मई सन् १८८२ ई० को आप अपने चार सहयोगियोंके साथ सेसन्सके हवाले

कर दिये गये। इन लोगोंने सत्याग्रहियोंके नियमानुसार बिना सफाई दिये जो कुछ लिखा था उसे स्वीकार कर लिया। यद्यपि उस समय सत्याग्रहके नियमकी कौन कहे सत्याग्रहका ही जन्म नहीं हुआ था। हमारी समझसे इस प्रकारका यह प्रथम अभियोग था, जिसमें सफाई देनेसे इन्कार किया गया हो। अन्तमें सबको कड़ी सजाएं दी गयीं। इससे जनतामें विक्षोभकी आग भड़क उठी। बहुतसी विरोध-सभाओंमें सरकारके कार्यकी कटु निंदा की गयी। लोकमान्य तिलकको मुक्त कर देनेकी भी अपीलें की गयीं पर सब निरर्थक हुईं।

हमने गत प्रसङ्गोंपर उस सोसाइटीकी चरचा की है जिसे लोकमान्य तिलकने ३५०) जो इन्हें दक्षिणास्वरूप मिले थे, दे दिये थे, उसका 'दक्षिणा शिक्षा-समिति था। इसीको अंग्रेजीमें एजूकेशन सोसाइटी कहते थे। अबतकको शिक्षण संस्थाओं और केसरी प्रेस, केसरी और मराठा पत्रका अधिकार उपयुक्त संस्थाको ही था। दोनों पत्र और प्रेस १८८७ ई० तक उक्त संस्थाके अधिकारमें रहे।

राजनीतिक मामलोंमें तो दोनों पत्रोंकी रायके सभी समर्थक थे, क्योंकि प्रेस और पत्रसे सम्बन्ध रखनेवाले

सभी सच्चे देशभक्त थे। हाँ, सामाजिक विचारोंमें इनमें बराबर मतभेद दिनोंदिन बढ़ता जाता था। आगरकरजीके विचारसे समाजमें एक क्रांति करके रूढ़ियोंको मूलसे उखाड़कर फेंक दिया जाय जो बुद्धि और तर्ककी कसौटीपर खरी और वैज्ञानिक न उतरें।

तिलकजी आवश्यक और हानि कारक रूढ़ियोंको हटा देनेके पक्षमें थे। किन्तु अन्य सभी रीति रस्मोंको एक-दम हटानेकी चेष्टा करनेसे एक भी बुराई न हटाई जा सकेगी। परस्पर एक संघर्ष पैदा हो गया। वह संघर्ष इतना बढ़ गया कि इनमें दो दलका हो जाना स्वाभाविक ही था। एक दलके नेता आगरकरजी और दूसरे दलके तिलकजी।

आगरकरजी इतने सुधारवादी हो गये थे कि हिन्दू धर्म और हिन्दू शास्त्रोंतकमें उनका विश्वास नहीं रह गया था। सन् १८८७ ई० में इन्होंने अपने विचारोंके प्रचारार्थ 'सुधारक' पत्रका प्रकाशन आरम्भ किया। केसरी और मराठासे इन्होंने अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया।

कुछ दिनोंतक तो पत्र और प्रेसका काम चार पाँच सज्जनोंकी साझेदारीमें चलता रहा। प्रेसपर कर्ज बढ़ गया

था। हाँ, यह बात जरूर थी कि दोनों पत्रोंकी दिनों दिन उन्नति होती जा रही थी। कार्य सञ्चानलकी सुगमताके लिए प्रेसका अधिकार और पत्रका अधिकार अलग कर दिये गये। ऋण सहित केसरी और मराठाका पूरा अधिकार तिलकजीको और प्रेसका अधिकार दूसरे हिस्सेदारोंको मिला। उस समय पत्रपर ७ हजारका कर्ज था। तिलकजीको प्रेससे अधिक पत्रकी आवश्यकता थी। पत्र हाथमें रहनेसे अपने सिद्धान्तोंका वे अच्छी तरह प्रचार कर सकते थे। प्रेसकी छपाई वे पत्रकी आमदनीसे देने लगे।

लोकमान्यके 'केसरी' पत्रने महाराष्ट्र भरमें राजनीतिकी चिनगारियाँ फैला दीं। मराठी भाषाके जानने वाले संसारमें जहाँ कहीं भी थे वे 'केसरी' पढ़नेके लिए उतावले रहने लगे। लोकमान्यकी लौह लेखनीने अपने विरोधियोंको कस-कसकर जवाब देना शुरू कर दिया। इनकी धाक देशभरमें जम गयी।

केसरीका प्रभाव

केशरीकी टिप्पणियोंका प्रभाव सीधे पाठकोंपर तो पड़ता ही था, सरकार भी उसकी टिप्पणियोंसे सतर्क रहती थी। उसकी नीति थी कि करो चाहे जो कुछ भी,

पर बदनामीका टीका माथेपर न लगने पाये। जिस समय तिलकजीकी लेखनी अपना जौहर दिखा रही थी रत्नागिरि-में क्राफर्ड साहब नामक अंग्रेज अफसर बड़े गुणग्राही और मिलनसार थे। स्थानीय भाषा बड़ी आसानीसे बोल लेते थे। तिलकजीसे इनकी खूब पटती थी। इतना होने-पर भी इनमें घूसखोरीका बड़ा भारी ऐब था।

जब लोगोंमें खर्च करनेकी आदत बढ़ जाती है तब वेतन और साधारण आमदनीसे काम नहीं चलता। ऐसी हालतमें अपने-अपने पेशेके अनुसार लोग अनुचित आय-का उपाय निकालने लगते हैं। अफसरोंके लिए घूसखोरी आसान निकृष्ट उपाय है और क्राफर्ड साहबको भी इसकी आदत पड़ गयी। जैसे-जैसे हरामकी आमदनी होने लगी, वैसे-वैसे उनका खर्चा भी बढ़ने लगा। यहाँतक कि साहबबहादुर ऋणग्रस्त भी हो गये।

पहले तो सरकारने ध्यान न दिया। बादमें इनपर घूसखोरीका मामला चला ये गिरफ्तार कर लिये गये। इसी सिलसिलेमें हनुमन्तराव नामक एक व्यक्तिको सजा भी हुई। क्राफर्ड साहब प्रमाणके अभावमें निर्दोष छूटे। इस मामलेमें भी तिलकजीने सरकारको खरी-खोटी

सुनायी। इसका अर्थ यह नहीं है कि वे एक अपराधीका समर्थन कर रहे थे। क्राफर्डके गुणोंके कारण वे उससे मिलते-जुलते थे, पर उसकी इस आदतसे तिलकजीको भी बड़ी घृणा थी। आलोचनाका यही तात्पर्य था कि सरकारकी असावधानीसे ही घूसखोरीकी प्रवृत्ति लोगोंमें बढ़ती है।

इस मुकदमेके सिलसिलेमें कई तहसीलदार गवाही देनेसे हटा दिये। तिलकजीके घोर विरोध करनेके कारण सरकारने बहुतसे तहसीलदारोंको फिरसे नौकरी दे दी। कुछ पेंशन पाने लगे, कुछ रायबहादुरकी उपाधिसे सम्मानित किये गये।

तिलकजीके इस असाधारण प्रभावसे उक्त तहसीलदार बहुत प्रसन्न हुए। गयी हुई इज्जत वापस मिली। वे सबके सब इनके परम शुभचिन्तक भक्त हो गये। आपसमें सलाह करके तिलकजीका शानदार स्वागत किया और प्रेमोपहारमें एक बहुमूल्य चाँदीकी घड़ी और सुन्दर रेशमी डुपट्टा समर्पित किया। इस घड़ीको वे स्मृति स्वरूप सदा अपने साथ रखते थे और वह अन्ततक इनके साथ रही।

कानूनी कक्षा

कालेज छोड़ देनेके बाद लोकमान्यके सामने आजीविकाका प्रश्न उपस्थित हुआ। केसरी और मराठापर काफी ऋण था, तब उससे कुछ पानेकी आशा ही उस समय व्यर्थ थी। यह तो उन्हींका साहस था कि सब कुछ सिरपर झेलते हुए वे देशसेवाके इस साधनको छोड़ना नहीं चाहते थे अपनी जीविका चलानेके लिए उन्होंने ला क्लास (कानून पढ़ानेकी कक्षा) खोल दी। रुपयोंको यह जीवनका मुख्य ध्येय तो समझते न थे, किसी प्रकार घर खर्च चलते हुए देश-सेवा होती रहे बस इतनी ही आमदनीमें इन्हें संतोष था। इस कक्षासे इन्हें १५०) मासिकतककी आमदनी हो जाया करती थी जहाँ इनके साथी १५०) किसी केसमें एक वार खड़े होने भरकी फीस टीप लेते थे। उन लक्ष्मीके चाहकोंको ये उपेक्षाकी दृष्टिसे देखते थे। जिसके पास मानवताका अशेष खजाना भरा होगा उसके आगे लक्ष्मीकी हस्ती क्या है।

सन् १८९९ ई० में प्लेगके प्रकोपसे ला क्लास बन्द हो गया। मराठा और केसरीके सम्पादनका कार्य अधिक बढ़ जानेसे तिलकजी इस झंझटके कामसे मुक्ति पाया।

ऋणभारसे भी दोनों पत्र मुक्त हो चुके थे। अब इसीसे कार्य चलने लग गया था। इन दोनों पत्रों द्वारा लोकमान्यने जो लोक हित किया वह और किसी पत्रसे न हो सका था। अब भी उनका अस्तित्व अपने उसी उद्देश्यकी भित्तिपर अक्षुण्ण है।

हिन्दू-मुस्लिम झगड़े

प्राचीन आवश्यक सामाजिक नियमोंको छोड़कर तिलकजी भी सुधारक ही थे। स्त्री-शिक्षाके भी पूरे पक्षपाती थे। अपनी पुत्रियोंको उन्होंने उच्च शिक्षा दिलायी थी। विदेश गमनके भी समर्थक थे। बुढ़ौतीमें समुद्र पारकी यात्रा करके प्रमाणोंद्वारा शास्त्रसम्मत सिद्ध कर दिया था।

कालेज छूटने और पत्रमें अच्छी तरह जुट जानेके साथ ही आपका पूर्ण राजनीतिक जीवन आरम्भ होता है। हिन्दू-मुस्लिम ऐक्यके भी ये पूरे समर्थक थे। इनका सिद्धान्त था कि बिना भारतीयोंके एक हुए कभी भी हम स्वतंत्र नहीं हो सकते। राजनीतिमें धार्मिक अड़ंगेबाजीको वे बहुत बुरा समझते थे यद्यपि तिलक भगवानके माथेपर तिलककी शोभा सदैव बनी रहती थी। उनका धार्मिक जीवन अलग था और राजनीतिक जीवन अलग। हिन्दू-

मुस्लिम दंगोंका सारा दायित्व आप सरकारके सिरपर डालते थे। इनकी इस विषयकी आलोचनाओंके कारण कुछ लोग तो पहले इसका कारण इन्हींको समझने लग गये थे, पर कोई जो कुछ चाहे समझा करे। किसीके समझने या न समझनेके कारण ये अपने विचारोंको कब छोड़ने लगे थे। इन्होंने सरकारकी इस मामलेमें खूब चुटकियाँ लीं।

इनका कहना था कि पहले तो हिन्दू-मुस्लिम दङ्गोंकी सीमा बातोंतक ही थी। अंग्रेज सरकारके तथा-कथित स्वर्णयुगमें लाठी छुरे भी चलने लगे। 'डिवाइड ऐण्ड रूल' (फूट पैदा करके राज्य करो) इनका सिद्धान्त ही है। मुसलमान भी तिलकजीके विचारोंसे सहमत हो गये। सरकार अपनी खरी आलोचनाओंसे जल भुन उठी। उसकी वक्रदृष्टि तिलकजीपर पड़ गयी।

सरकारने इनपर चौकसी करनेके लिए इनके पीछे सी० आई० डी० के आदमी नियुक्त कर दिये। एक बार आप किसी मित्रके यहाँ गए। खुफिया भीतर तो जा नहीं सकता था। दूसरे वह इनकी निगाह बचाकर इनके साथ लगा था। यदि प्रत्यक्षरूपसे लगा होता तो ये उसके बैठनेकी अवश्य व्यवस्था कर देते।

तिलकजीको अपने मित्रके यहाँ एक बजे राततक रहना पड़ा। सी० आई० डी० बेचारा फाटकपर ही बैठे-बैठे सो गया। जब आप बाहर आये तो उसे सोता देखा जगाकर कह दिया कि अब हम जाते हैं, तुम भी अपना कार्य पूरा करो। सी० आई० डी० वाला लजाकर उनको नमस्कार करके चला गया। इस प्रकारकी एक-न-एक घटना सदैव घटा करती थी।

जिस समयकी यह घटना ऊपर दी गयी हैं उस समय बड़ौदाके बापट महोदयपर भी घूसखोरीका मामला चल रहा था। बापट साहबसे तिलकजीकी खूब पटती थी। उनकी मददके लिए ही आप बड़ौदा गये थे। बापटकी सहायतासे बड़ौदा राज्यको भी लाभ पहुँचा। लोगोंका अनुमान है कि बड़ौदा नरेशने अपनी नारायण पेठवाली कोठी उनकी सेवाओंसे प्रसन्न होकर मुफ्तमें दे दी थी। यदि यह बात सत्य भी होती तो भी कोई आश्चर्य-जनक घटना न थी, पर दरअसल लोकमान्यने इस कोठीको बड़ौदा सरकारसे खरीद लिया था। हाँ यह बात अवश्य है कि बड़ौदा-नरेश तिलकजीका हार्दिक सम्मान करते थे, उन्होंने इनसे इनका मूल्य कमती ही लिया था।

जिस सर फिरोजशाह मेहताने सरकारके चंगुलसे तिलकजीको बचानेके लिए इनकी अथक पैरवी की थी वही फिरोजशाह बापटके विरोधीपक्षका समर्थन कर रहे थे। फिरोजशाहके सहयोगी वकील मि० ब्रेंसन थे। पर यह तो पेशेकी बात थी। तिलकजीके लिए अब भी उनकी सेवाएँ मौजूद थीं। बापटका मामला भी राजनीतिक महत्वसे वञ्चित वैयक्तिक अभियोग था।

तिलकजीने एक सफल वकीलकी हैसियतसे ऐसी पैरवी की कि बहसमें विरोधी पक्षके दोनों प्रख्यात वकीलों-का मुँह बन्द कर दिया। इस मुकदमेमें बापट निर्दोष घोषित करके छोड़ दिये गये। लोगोंको गोया तिलक महाराजने दिखा दिया कि तिलक यदि खाली रुपयोंका भूखा होता तो इसी प्रकार न जाने कितने मुकदमोंको जीतकर रुपयोंसे घर भर लिया होता। जो वकील रात-दिन यही पेशा करते चले आ रहे थे वे भी लोकमान्यकी इस असाधारण बहसको सुनकर दङ्ग रह गये। थीं भी दङ्ग होनेकी बात। जिसने वकालत पास करनेके बाद वकालतकी तरफ आँख उठाकर देखा भी न हो, वह ऐसी बहस करे मानो काननको घोलकर पी चुका हो, यह कोई

साधारण बात न थी। पर लोकमान्यके लिए यह भी साधारण ही बात थी। उनकी स्मरणशक्ति इतनी प्रबल थी कि जिस बातको वे सुन लिया करते थे कभी भूलते ही न थे। एक बार सन् १९०८ ई० में इन्होंने अपने मुकदमेकी भी बहस स्वयं की थी।

बम्बई कांग्रेस

सन् १८८९ ई० में कांग्रेसका जो अधिवेशन बम्बई-में हुआ था, वह इसके पहलेके सब अधिवेशनोंमें महत्व-पूर्ण था, यद्यपि आजके कांग्रेस-अधिवेशनके सामने वह एक साधारण सी सभा ही कही जा सकती है। पहले-पहल लोकमान्यने ही कांग्रेसमें यह प्रस्ताव उपस्थित किया था कि कौंसिलोंका चुनाव गोपनीयरूपसे हुआ करे। प्रकटरूपसे चुनाव होनेके कारण अनेक प्रकारकी असुवि-धाएँ होती हैं। इस प्रस्तावके समर्थनमें आपने जो तर्क-पूर्ण भाषण दिया था उसमें इस प्रकारकी असुविधाओंका भली-भाँति दिग्दर्शन कराया था। यही एक शुभ प्रसङ्ग था, जब मनीषि गोपालकृष्ण गोखलेने इनके प्रस्तावका समर्थन किया था, पर प्रस्ताव बहुमतके विरोधसे गिर

गया। लोकमान्यसे इसके बाद भी सदैव गोखलेजीका मत-भेद बना रहा। वे बराबर एक दूसरेका विरोध करते रहे।

कौंसिल-प्रवेश

जब लोकमान्यने कौंसिल-प्रवेशका निश्चय किया तो यह बहुमतसे विजयी हुए। सन् १८९६ ई० में इनके न खड़े होनेपर गोखलेजी चुने गये। इसके बाद कौंसिलसे इनकी विरक्तिसी हो गयी और इन्होंने कौंसिल चुनावमें भाग लेना ही छोड़ दिया। कौंसिलमें यही एक ऐसे स्वाभिमानी सदस्य थे जो सरकारके घरमें सरकारकी आलोचना निर्भीकताके साथ कर सकते थे। हाँ-में-हाँ मिलाना इनके स्वभावके विरुद्ध था।

तिलकजी कौंसिलमें रहते हुए बाहरी संसारमें भी उसी लगनसे जुटे रहते थे। अपनी कार्यपटुतासे बम्बई प्रान्तीय कांग्रेसके आप पाँच वर्षतक मंत्री रहे। लोकाग्रह-वश ही रहना पड़ा। इन्होंने इस कामको बड़ी तत्परतासे निभाया। पूनामें जो इसका पांचवाँ अधिवेशन हुआ था उसमें तिलकने रात-दिन परिश्रम किया था। इसके पहले ऐसी सफल प्रांतीय कांग्रेस भी कहीं नहीं हुई थी।

१८९५ में अ० भा० कांग्रेसका अधिवेशन पूनामें हुआ था। तिलकजी स्वागत समितिके मन्त्र चुने गये थे। ये बड़ी तत्परतासे अपने कार्यको सफल बनानेमें लगे हुए थे कि कुछ सामाजिक विचारके लोगोंने एक अड़ङ्गा पैदा कर दिया। वे लोग समाज सुधार सम्बन्धी एक अधिवेशन कांग्रेसके पण्डालमें करना चाहते थे। लोकमान्य कांग्रेस-को विशुद्ध राजनीतिक सभा बनाये रखनेके पक्षपाती थे। उनकी यह धारणा थी कि सामाजिक सभाएँ कांग्रेससे अलग होनेपर भी कांग्रेसके पण्डालमें यदि उनका अधि-वेशन होगा तो अवश्य उसका प्रभाव कांग्रेसपर पड़ेगा। फिर दूसरे समाजके लोग भी अपनी सभाओंके लिए मांग पेश करने लगेंगे और कांग्रेसमें दलबन्दी बढ़ जायगी।

लोकमान्यकी इस युक्तियुक्त बातसे भी सुधारवादी सहमत न हुए। वे अपनी मांगपर डटे ही रहे। फलतः लोकमान्य तिलक सिद्धान्तकी रक्षाके लिए मन्त्रिपदसे त्यागपत्र देनेपर भी कांग्रेसको उनकी अमूल्य सेवाएँ उसी श्रद्धाभावसे मिलती रहीं जिस प्रकार महामना मालवीयजी मतभेद होनेसे कांग्रेससे अलग हो जानेपर भी कांग्रेसके अनन्य भक्त बने रहते थे। मतभेद लोगोंसे होता है

कांग्रेससे नहीं, उसी प्रकार तिलक भी आजीवन कांग्रेसके निष्काम भक्त बने रहे।

दूसरी सजा

सन् १८९७ ई० में पूनामें महाभयानक प्लेग फैला। इसके पूर्व दक्षिण प्रांत अकालसे संत्रस्त हो चुका था। धड़ाधड़ लोग मरने लगे। सरकारने एक प्लेग कमेटीकी नियुक्ति की। प्लेग-निवारण कमेटीके कर्मचारी जिन उपायोंसे प्लेगको दूर करना चाहते थे उनसे प्रजाको असह्य कष्ट और असुविधाओंका सामना करना पड़ता था। घर खाली करके धुलाते समय कितने ही गोरोंने भारतीय महिलाओंके साथ बड़े बुरे व्यवहार किये थे। इस बातकी शिकायत माननीय गोखले महोदयने विलायतमें सरकारसे की थी। पर लोग सरकारके विरुद्ध गवाही देनेमें साहससे काम न ले सके। फलतः गोखलेजीको अपनी शिकायतें वापिस लेनी पड़ीं।

"अतिशय रगर करै जो कोई। अनल प्रकट चंदन तें होई।" के अनुसार इस प्लेगके प्रबन्धकी परेशानीसे लोग तङ्ग आ गये। इन परेशानियोंसे मरना ही अच्छा समझा गया, जिससे सदाके लिए परेशानीसे मुक्त हो जायं।

चाफेकर नामक एक नवयुवकसे न रहा गया। उसने प्लेग-कमेटीके अध्यक्ष मि० रैण्डका खून २७ जून सन् १८९७ ई० को कर डाला।

इस खूनसे देशभरमें सनसनी फैल गयी। सरकारने सतर्कतासे यही निष्कर्ष निकाला कि 'केसरी' के लेखोंसे प्रभावान्वित होकर अभियुक्तने मि० रैण्डका काम तमाम किया है। इधर शिवाजी उत्सवमें जो राष्ट्रीयताकी जागृति दिखाई पड़ने लग गयी थी उसके आविष्कारक एक मात्र भगवान तिलक ही थे। सरकारने सब खुराफातोंकी जड़ तिलकको ही समझा।

इनपर राजद्रोहका मुकदमा चलाया गया। बात तो बहुत लम्बी चौड़ी है और है महत्वपूर्ण भी पर स्थानाभावसे संक्षेपमें इतना ही बता देना पर्याप्त है कि जजने कानूनका मनमाना एक नया अर्थ लगाया और छः अंग्रेज जूरियोंने भी इन्हें दोषी ठहराया। दोषी नहीं ठहराते तो क्या वे इन्हें भगवान तिलक कहकर प्रणाम करते। तिलकजी तो गोरोंकी आँखमें किरकिरी नहीं सलाकाकी तरह खटक रहे थे। तीन मराठी जूरियोंके निर्दोष बतानेपर भी अंग्रेजोंके बहुमतके आगे कानून और न्यायका अभिनय

करके तिलकजीको दोषी ठहराकर जजने १८ मासकी कठिन सजा ठोंक दी।

तिलक भगवानने वेदोंके रचनाकालका जो शास्त्रीय अन्वेषण किया था वह अपने ढङ्गका निराला और स्तुत्य था। जेलमें आनेपर इस कार्यमें और भी सुगमता हो गयी। इन्होंने इस सम्बन्धमें एक लेख अंग्रेजीमें लिखकर लण्डनकी प्राच्य-परिषद्‌में भेज दिया था। वहां उस निबंधकी खूब प्रशंसा हुई और तिलकजी भारतकी तरह विलायतमें भी जगमगा उठे। गुणियोंकी कदर करनेवाले भी विलायतमें कम नहीं हैं। इसी लेखको उन्होंने ओरियन नामसे पुस्तकरूपमें प्रकाशित कराया। यूरोपके प्रसिद्ध विद्वान प्रो० मैक्समूलरने इसकी खूब प्रशंसा की। वे तिलकजीके घनिष्ट मित्र हो गये। उन्होंने और हण्टर साहबने इस सम्बन्धमें महारानी विक्टोरियासे सिफारिशकी कि तिलक जैसा विद्वान जेलमें पड़ा सड़ा करे यह ब्रिटिशराज्यके लिए कलंककी बात होगी। सिर्फ ६ महीने सजा भोगनेको और बाकी रह गयी थी कि ये ६-६-१८६८ ई० को जेलसे मुक्त कर दिये गये।

मुकदमेके दौरानमें इनके मित्रोंने इनसे आग्रह किया

था कि ये माफी मांग ले। इस सम्बन्धमें इन्होंने एक पत्र स्व० बाबू मोतीलाल घोषको लिखा था जो अब प्रकाशित हुआ है। उस पत्रके पढ़नेसे ही भगवान तिलकके आत्मसम्मानका अनुमान किया जा सकता है। तिलकजीने लिखा था कि 'मित्रगण क्षमा-याचनाके लिये आग्रह कर रहे हैं, पर जब कि मैं अपनेको निर्दोष समझता हूं तब क्षमा याचना कैसी? इस प्रकारकी क्षमा प्राप्तिसे देशवासियोंमें मुंह दिखानेकी अपेक्षा काले-पानीमें जाकर मर-मिटना ही मेरी दृष्टिमें कहीं अच्छा है?"

अपनी भूलोंको स्वीकार कर लेनेमें तिलकजी आना-कानी नहीं करते थे, पर अपनेको निर्दोष समझते हुए भी कभी किसीके सामने सिर झुकानेको तैयार नहीं होते थे।

राष्ट्रीय मेले

तिलकजीके जीवनके दो महत्वपूर्ण कार्य हैं गणपति उत्सव और शिवाजी उत्सव। यद्यपि गणपति उत्सव महाराष्ट्र देशका प्रधान उत्सव है, पर पहले उसमें धार्मिकता अधिक थी। लेकिन इन्होंने इस उत्सवमें राष्ट्रीयताका रंग ला दिया, यही इस मेलेकी विशेषता हो गयी। राष्ट्रीयता-

की दृष्टिसे भारतवर्षमें तिलकजीकी यह पहली सूझ थी।

रायगढ़में महाराज छत्रपति शिवाजीकी समाधि है। पहले भी कुछ देशभक्त अथवा धार्मिक विचारके लोग उक्त समाधिको देखनेके लिए जाया करते थे। छत्रपति शिवाजीका महाराष्ट्रमें राजनीतिक तथा धार्मिक विचारसे घर-घरमें सम्मान है, पर उनकी जीर्ण-शीर्ण समाधिकी अवस्था पर किसीका ध्यान न गया। सन् १८८६ ई० में एक अंग्रेजने उस समाधिका दर्शन करके उसकी भग्नावस्थाका मार्मिक वर्णन किया। करे भी क्यों न! यह अंग्रेज उस गुणग्राही देशका है, जहाँ लड़ाईमें काम आये हुए कुत्तों, घोड़ों और कबूतरों आदिके स्मारक बनाये जाते हैं।

इसी प्रकार और भी कई अंग्रेजोंने इसकी मरम्मतके लिये लोगोंका ध्यान आकृष्ट किया। टेम्पुल नामक एक अंग्रेजने तो कुलबाके कलेक्टरसे भी मरम्मत करा देनेकी अपील की थी। डगमल साहबने तो इस विषयको लेकर एक पुस्तक ही लिख डाली थी। जिसमें उन्होंने मरहठोंको उनकी इस कृतघ्नतापर खूब फटकार बतायी थी। वास्तवमें एक लज्जाजनक बात थी। जिस शिवाजीने हिन्दू राष्ट्रकी स्वाधीनताके लिए अपना जीवन लगा दिया आज उसकी

समाधिपर घास फूस जमे यह मरहठोंके ही लिए नहीं बल्कि हिन्दू मात्रके लिये डूब मरनेकी बात थी।

लोकमान्य तिलकका ध्यान इस ओर गया। उन्होंने 'केसरी' में इस विषयपर लिखना शुरू कर दिया। जोशीले लेख और कविताओंका जनतापर खूब रङ्ग जमा चन्दा वसूल होने लगा। कोल्हापुरके महाराजाने भी हाथ बँटाया।

शिवाजी स्मारक-समिति बनायी गयी। लोगोंने खूब उत्साहसे काम आरम्भ कर दिया। इधर अंग्रेजी अखबारोंने इस कामका विरोध करना शुरू कर दिया। उनकी दृष्टिसे यह अराष्ट्रीय और साम्प्रदायिक विद्वेषको उभाड़नेवाला है। पर लोकमान्य इन बातोंकी परवाह न कर लिखते और रुपया इकट्ठा करते रहे। बड़े परिश्रम के बाद भी ६०००) से अधिक चन्देसे न आ सका।

फिर सजा

तिलकजीने शिवाजी उत्सवके सम्बन्धमें सर सुरेन्द्र-नाथ बनर्जीकी अध्यक्षतामें एक सभा की। मालवीयजीने भी इस सभामें बड़ा ही जोशीला व्याख्यान दिया था। और भी कितने ही प्रभावशाली व्याख्यान हुए थे।

एक बार महाराष्ट्र देशमें उत्साहकी लहर फिर फैल गयी। केसरीमें शिवाजी उत्सवके नियम और उद्देश्य छपे।

इसी बीचमें अफजलखाँके वधको लेकर विरोधीपक्षने एक और अड़ङ्गा खड़ा कर दिया। खैर, एक अंग्रेजकी अध्यक्षतामें इस विषयको लेकर सभा हुई और यह मामला निस्सार सिद्ध हुआ। उसके बाद कलेक्टर साहबके उत्सवकी आज्ञा देनेसे इन्कार करनेपर तिलकजीने गवर्नरसे मिलकर आज्ञा प्राप्त कर ली।

१३ जून सन् १८९७ ई० को शिवाजी गद्दीपर बैठे थे। इस दिन तिलकजीने रायगढ़में इस उत्सवको बड़ी धूम-धामसे मनाया। इसके पहले रामगढ़में इतना बड़ा मेला कभी नहीं लगा था। छत्रपति शिवाजी और उनके आदर्श गुरु रामदासजीके चित्र सजाये गये थे। जिसके सामने बड़े-बड़े राजा रईसोंने भेंटस्वरूप नारियल सुपारी आदि चढ़ाई थी। इस उत्सवमें सरकारी गोइन्दे भी मौजूद थे। इन लोगोंने अपनी रिपोर्टोंमें इस मेलेको राजद्रोह करार दिया और लोकमान्यपर राजद्रोहका मामला चलाकर उनके चिरपरिचित कृष्ण-मन्दिर (जेल) में भेज दिया गया।

जिस चीजको दबानेके लिये तिलकजी जेल में भेजे गये। वही उनके वापिस आनेपर ऐसा जोर पकड़ा कि इस विराट् आयोजनमें देश भरके लोगोंने भाग लिया। इस प्रकार 'मर्ज बढ़ता ही गया, ज्यों ज्यों दवा की।"

लोक-सेवा

तिलकजीकी देश सेवा लेख, सम्पादन और व्याख्यानोंतक ही सीमित न थी। वे दीन-दुखियोंकी सेवाके लिए अपनी जानकी बाजी लगा देते थे। सन् १८९६ ई० में महाराष्ट्रमें दुर्भिक्ष और सन् १८९७ ई० में प्लेग फैला। इन दोनों दैवी विपत्तियोंसे जनतामें त्राहि-त्राहि मच गयी। मृत्यु संख्या इतनी बढ़ गई कि उचित व्यवस्था कठिन हो गई। तिलकजी निर्भयताके साथ लोक-सेवामें कूद पड़े थे। उन्होंने सरकारको भी प्रजा सेवाके लिए परेशान कर डाला। खुद हिन्दू-मुसलमानका भेदभाव छोड़कर मरीजोंकी सेवामें पहुँचते रहे। सस्ते दामोंकी अनाजकी दूकानें खुलवाना और डाक्टरोंकी व्यवस्था करना उस समय आपका ध्येय था। सोलापुरके जुलाहे आज भी आँखोंमें आँसू भरकर उनकी की गयी सेवाओंको याद करते हैं।

तिलकजीके विरोधियोंने भी देखा कि ऊपरी लेक्चर तो सभी दे लेते हैं, पर कुछ करके दिखानेवाले तिलक जैसे ही कर्मवीर होते हैं। देशके सौभाग्यसे वे ईश्वर प्रदत्त प्रसादस्वरूप ही होते हैं।

तिलकजीकी ऐतिहासिक जेलयात्रा

कांग्रेसके इतिहासमें सन् १६०८ ई० बड़ा मनहूस कहा जा सकता है। इस सन् में आपसमें काफी मतभेद फैल गया। लोगोंमें हिंसात्मक क्रांतियोंकी प्रवृत्ति फैलने लगी। कितने नवयुवक क्रांतिकारी हो गये। इधर-उधर बम फेंके जाने लगे। मुजफ्फरपुरमें एक बंगाली नवयुवकने दो अंग्रेज महिलाओंपर बम फेंककर मार डाला। इस कामसे सनसनी फैल गयी। गोरे और गोरे पत्रोंकी तो क्या पूछना! एक पत्रने तो यहाँतक छाप दिया कि एक अंग्रेजके मरने-पर दस हिन्दुस्तानियोंको प्राण-दण्ड होना चाहिए।

इस विषयपर सभी पत्रोंने अपने विचार प्रकट किये। लोकमान्यने भी केसरीमें कई लेख लिखे। एक लेखमें इन्होंने विचार प्रकट किया था कि "बम फेंकना या हिंसात्मक कार्य करना बुरा है सही, पर इसका दायित्व

सरकारपर ही है। यदि सरकार प्रजाके साथ मानवोचित व्यवहार करे, उसे असन्तुष्ट होनेका अवसर ही न दे तो ऐसे काण्ड सदाके लिए बन्द हो जायं।

यद्यपि बात खरी थी, पर "कहे अन्धको आंधरों मानि बुरो सतरात" सरकारने केसरीके इन लेखोंके कारण तिलकजीको राजद्रोही ठहराया। वे बम्बईमें अपने एक मित्रके यहाँ ठहरे थे। रातको वारण्ट लेकर पुलिसके कर्मचारी पहुँच गये। तिलकजी उसी समय उनके साथ हो लिये। वे तो इस बातको जानते ही थे कि जमानत न होगी। हवालातमें जाते ही निश्चिन्ततासे तानकर सो रहे।

१३ जुलाईको मामला चला, दिनभर तिलकजीने स्वयं अपनी पैरवी की, वे खुद एक प्रतिभाशाली वकील थे। रात नौ बजे यह नाटक भी समाप्त हुआ। ६ जूरियोंमें ७ अंग्रेज २ पारसी थे, जिनमें मराठी एक भी नहीं जानता था। हमें केसकी आलोचना नहीं करनी है। लोकमान्य तिलकजी ६ वर्षके लिए जेल भेज दिये गये। १ हजार रुपया जुर्माना घाटेमें ऊपरसे। यह समाचार बिजलीकी तरह देशभरमें फैल गया। सर्वत्र सरकारकी इस दमननीतिका

विरोध किया गया। बम्बईमें तो ऐसे सन्नाटेकी हड़ताल हुई कि कुलियोंतकने काम बन्द कर दिया था।

लोकमान्यकी इस बारकी जेल-यात्रा और भी लोक-कल्याणकारी सिद्ध हुई और इस यात्राने लोकमान्य तिलक को भगवान तिलकके रूपमें परिणत कर दिया। अबसे हम भी आपको भगवान तिलकके नामसे ही सम्बोधित करेंगे। मांडले (वर्मा) की जेलमें भगवान तिलकने अपनी ६ वर्षकी कठिन तपस्यामें श्रीमद्भगवद्गीताकी संसार प्रसिद्ध टीका और व्याख्या 'गीतारहस्य' नामसे की। इस समय इसके कई भाषाके संस्करण निकल चुके हैं। भगवान कृष्णचन्द्रजीने महाभारत जैसे संकटकालमें गीताके ज्ञानसे अर्जुनका मोह-भंग किया था तो जेलके संकटकालमें भगवान तिलकने गीताकी तिलक (टीका) करके संसारके मोह पाशको काटनेका सफल मार्ग खोल दिया।

विभिन्न भाषाके प्रकाण्ड पण्डितोंका विचार है कि 'गीतारहस्य' जैसी टीका गीताकी आजतक किसीने नहीं की थी। मानो भगवान कृष्णने यह कार्य भगवान तिलक-के ही लिए छोड़ रखा था। ६ वर्ष बिताकर गीता-रहस्य रूपी कृष्णमन्दिरका प्रसाद लेकर भगवान तिलक पुनः

भारतीयोंमें आ मिले। जनताने श्रद्धेय नेताका पलकें बिछाकर स्वागत किया और हृदयासनपर आसीन किया। भगवान तिलक फिर कार्यक्षेत्रमें जुट गये। योगेश्वर कृष्ण जन्मकालसे लेकर महायात्रातक आजीवन कार्यक्षेत्रमें डटे रहे। भगवान तिलकसे भी कभी आरामसे बैठा नहीं गया और बैठा ही कैसे जाता जब उनकी मातृभूमि पद-दलित हो रही थी।

लोकमान्य तिलक और कांग्रेस

लोकमान्य तिलक काग्रेसको ही देशकी एक मात्र संस्था मानते थे। उसीके द्वारा स्वराज्य-प्राप्तिकी वे आशा रखते थे। उनके अनेक स्थानोंके कांग्रेस अधिवेशनोंके व्याख्यान प्रसिद्ध हैं। सूरत कांग्रेसके अवसरपर नरम और गरम दो दल हो गये थे। नरमदलके नेता सच्चे देश-भक्त माननीय गोखले महोदय और गरमदलके नेता भग-वान तिलक थे। मतभेद यहाँतक बढ़ा कि सूरतमें नेताओंने कुर्सियों और लाठियोंका उपयोग किया और इस कांग्रेसको कुर्सी लाठी कांग्रेसकी पदवी मिली।

तिलकजीके जेल चले जानेपर लोगोंने दोनों दलोंमें

सद्भाव उत्पन्न करनेका विफल प्रयास किया। तिलकजी-के जेलसे बाहर आनेपर लोगोंने फिर नरम-गरम दलोंके एकीकरणका प्रयास किया। तिलकजीके प्रयत्नसे दोनों दल एकमें मिल गये और सारा भेद-भाव मिट गया। जब कभी मतभेद अधिक बढ़ जाता था तब तिलकजी कांग्रेससे अलग हो जाते थे, पर कांग्रेसके पौधेमें पानी ही देते रहते थे। उसे समूल नष्ट करनेका विचार आजके मतभेदियोंकी तरह वे कदापि नहीं रखते थे। सन् १९१६ ई० में आपने 'महाराष्ट्र होमरूल लीग' की स्थापना की।

तिलकजी और शिरोल

'शिरोल नामधारी एक अंग्रेजने भारतीय अशांति' नामक एक पुस्तक लिखी थी। जिसमें उसने लोकमान्य तिलकको ही सब अशान्तियों और षड्यंत्रोंका मूल कारण बताया था। तिलकजीने लण्डनकी प्रीवी कौंसिलमें उप-युक्त साहबपर मुकदमा चलाया।

पहले तो तिलकजीको पासपोर्ट ही नहीं मिल रहा था, मिला भी तो सरकारने कुछ सोचकर उसे रद्द कर दिया। उनके कागजातकी नकल भी न मिली और शिरोलको

नकल भी मिल गयी और सुविधाएँ भी शिरोलके वकील कार्सनसाहबने तो प्रीवी कौंसिलके जूरियोंको यहाँतक भड़काया था कि यदि इस मुकदमेमें तिलक जीत गया तो बस अंग्रेज जातिके बारह बज जायंगे। उनकी मिट्टी पलीद हो जायगी। तत्सामयिक जज सर जान सिसराननें खर्च सहित तिलकजीका दावा खारिज कर दिया। इस मुकदमेमें इन्हें करीब ३ लाखकी क्षति उठानी पड़ी। लोकमान्य इस बातसे अनभिज्ञ नहीं थे कि विलायतमें वही होगा जो भारतमें हुआ करता है, पर अपनी आन और धुनके अडिग होनेके कारण उन्होंने यह सङ्कट अपने ऊपर लाद लिया। देशमें इस मामलेके फैसलेसे असन्तोष फैल गया। राष्ट्रीय पत्रोंने इसकी कटु आलोचनाएँ की।

विलायतमें भारतका प्रतिनिधित्व

भगवान तिलक जिस समय विलायतमें थे, उस समय वे बहुत व्यस्त थे। मुकदमेकी हार! तीन लाखका धक्का! यह साधारण बात नहीं है। जिनके जीवनका उद्देश्य पैसा कमाना ही है, यदि उनपर ऐसी विपत्ति आ पड़ी होती तो आश्चर्य क्या कि वे आत्महत्या कर लेते, पर नर-केसरी

भगवान तिलकके लिये तो धन एक गौण और मानवता प्रधान वस्तु थी। उन्होंने मानवताकी जितनी रक्षा की उसके पुरस्कारमें उन्हें मिला कोटि-कोटि जनताका हृदय ! यह उपहार किसी भाग्यशालीको ही मिलता है।

तिलकजीने कांग्रेसका प्रतिनिधि होकर भारतकी आवश्यकताओंका खूब प्रचार किया। छोटे-बड़े, अफसर-मजदूर जहाँ गए वहीं उन्होंने भारतकी दुर्दशाका चित्र खींचा। इग्लैण्डकी कांग्रेस कमेटीका नवीन संस्कार किया। उस कमेटीने संघटित होकर भारतको स्वराज्य दिलानेके लिए देश भरमें आन्दोलन करना शुरू कर दिया। इसके पहले स्वदेशका ऐसा प्रतिनिधित्व किसीने नहीं किया था।

भगवान तिलककी रचनाएँ

भगवान तिलकने जबसे कार्य-क्षेत्रमें पदार्पण किया उन्हें अध्ययन और पुस्तकोंके लिखनेका अवकाश बहुत कम मिला। तिसपर भी अवकाश पाते ही आप पढ़ने-लिखनेमें लग जाते थे। सोचनेकी बात भी है दो-दो पत्रोंका सम्पादन, लेख लिखना और कांग्रेसके कामोंमें

व्यस्त रहना। अस्तु इन्हें अध्ययन और लिखनेका अवकाश जेलोंमें ही मिला करता था। जेलोंमें ये दार्शनिक, आध्यात्मिक ग्रन्थोंके अतिरिक्त वेदोंका भी मनन करते थे।

तीन वारकी जेलयात्रा—कृष्ण-मन्दिरसे तीन ग्रन्थ प्रसाद रूपमें लेकर भगवान तिलक बाहर आये। इन तीनों ग्रन्थोंने संसार भरमें आपकी अगाध विद्वत्ताका डंका बजा दिया। पहली जेलयात्रामें Orian (ओरियन) पुस्तक लिखकर वेदोंके रचना-कालका निर्णय किया। दूसरी बारकी यात्रामें आर्यों का निवास-स्थान और तीसरी यात्रामें गीता-रहस्य लेकर आये। गीता-रहस्यकी मूल कापी सरकारने नहीं दी थी, लोकमान्यजीने अपनी स्मरण शक्तिके बलपर उसे फिरसे लिख डाला था। किसी राजनीतिक नेताने आजतक ऐसी महत्वपूर्ण पुस्तकें नहीं लिखीं।

भगवान तिलकका पुण्य प्रयाण

भगवान तिलकने देश सेवामें अपना समस्त जीवन ही अर्पण कर दिया। रात-दिन व्यस्त रहनेके कारण वे न तो गृहस्थीकी सुव्यवस्था कर सकते थे, और न पत्रों-की ही। अस्तु इनपर कई लाखका ऋण चढ़ गया, इससे ये

बहुत चिंतित रहने लगे। एक दिन वह भी था कि लाख चेष्टा करनेपर भी तिलकजी २०००) प्रेसके लिए नहीं कर पाये थे। एक दिन वह भी आया कि महाराष्ट्रकी कृतज्ञ जनताने भगवान तिलककी सारी चिन्ताको क्षण भरमें दूर कर दिया। यथा शक्ति जनताने पान-फूल देकर तीन लाख रुपयोंकी थैली भगवान तिलकके चरणोंमें अर्पित करके अपनी श्रद्धाका परिचय दिया। लोकमान्यका अन्तिम जीवन बड़े संतोषसे बीता। यदि जनता इस प्रकार कर्तव्यका पालन न करती तो जनताका जनार्दन ऋण-भार-ग्रस्त ही महाप्रयाण करता। उसके पास ऋण-मुक्त होने का और कोई साधन भी तो नहीं था। उसके पास तो जो कुछ था उसे उसने जनताको पहले ही अर्पित कर दिया था।

एक बात हम यहाँ भूल जा रहे थे। जब भगवान तिलक विलायतमें थे तभी देशने उनकी ६० वीं जयंती मनानेका निश्चय किया। साथ ही एक लाख रुपयोंकी थैली भी समर्पित करनेका निश्चय किया गया था। जयंती मनानेका दिन सिर्फ एक मास रह गया था, पर देशने ठीक जयंतीके दिन एक लाखकी रकम पूरी कर दी। लोकमान्य-

के स्वदेश पधारनेपर यह थैली उन्हें समर्पित की गयी और उन्होंने उसी क्षण उस धनराशिको होमरूललीगको प्रदान कर दिया।

इसके कुछ दिन बाद कोलाबा निवासी भगवान तिलककी ६४ वीं जयंती-उत्सव मना रहे थे। आपने भी पधारकर उस उत्सवकी शोभा बढ़ायी थी। वे मोटरसे वापस आ रहे थे कि उन्हें कुछ सर्दी महसूस हुई और २३ जुलाई को कुछ ज्वर हो आया और इसी ज्वरने अंतको महाकालके रूपमें परिणत होकर भगवान तिलकको हमसे छीन लिया। जब वे रोग-शैय्यापर थे तब भी उनका साहस और धैर्य पूर्ववत् बना रहा। बम्बईका सरदार महल जहां उन्हें पुण्य-गति प्राप्त हुई थी दिन रात लोगोंसे भरा रहता था, घोर वृष्टिमें भी दर्शनार्थी भींगते हुए बाहर खड़े रहते थे। अंतिम समयमें भगवान तिलक सन्निपातसे ग्रसित हो गये थे। किसी श्रद्धालुने गीता उठाकर भगवान तिलकसे श्री-कृष्णका चित्र दिखाते हुए पूछा—'यह क्या है?' लोकमान्यने थोड़ी देरतक चित्रकी तरफ देखकर कहा—"यह श्रीकृष्णका चित्र है, इनके चरित्रका सबको अनुकरण करना चाहिए।"

मृत्युके दो दिन पूर्व आपने ब्राह्मणोंको बुलवाकर

गीताजीका पाठ कराया था। मृत्युके क्षण निकट आते जा रहे थे। पर भगवान तिलक इनसे न तो विचलित हुए न उनके मुखमण्डलपर उदासीनता ही दिखलाई पड़ी। उनके मुखसे अचानक निकल पड़ा—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य, तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनाम् विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म-संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

इसके बाद आपने श्रीकृष्णचंद्रजीके चित्रको प्रणाम किया और सदाके लिये संसारसे आंखें मूँद लीं। ३१ जुलाई सन् १६२० ई० की रातको १२ बजकर ४० मिनटपर भगवान तिलकने इहलोक लीला समाप्त की। महात्मा गाँधीजी भी अपने आदरणीय मित्रकी सेवा सुश्रूषाके लिये पंजाबसे चले आये थे और प्रत्येक क्षण उनके पास बने रहे।

भगवान तिलकके पुण्य प्रयाणका समाचार संसार भरमें बिजलीकी तरह फैल गया। बम्बईकी तो बात ही न पूछिए, देखते ही देखते सारा नगर निर्जीवसा हो गया। जैसे बिजली बुझ जाय सभी दूकानें, बैंक, कालेज, स्कूल

बन्द हो गए। आपके विमानके साथ जनताका समुद्र उमड़ पड़ा। मकानोंकी छतोंसे पुष्प और गुलाबजल, इत्र, रुपये और पैसोंकी वृष्टि हो रही थी। आपका अन्तिम संस्कार चौपाटीके पवित्र स्थानपर समुद्रके किनारे किया गया। इसके पूर्व इस स्थानपर किसीका दाह करनेकी सरकारी आज्ञा नहीं मिली थी। लोगोंका ख्याल है कि लोकमान्य-के दाह संस्कारके समय बम्बईकी १२-१४ लाखकी आबादीका आधा भाग उनको जलाञ्जलि देनेके लिये समुद्रके किनारे खड़ा था। पूना आदिसे लाखों आदमी स्पेशल गाड़ियोंमें आ गये थे। चारों ओर भगवान तिलककी जयके गगन-भेदी नारे लगाये जा रहे थे। महात्माजी जुलूसके आगे-आगे चल रहे थे और दाह-संस्कारके समय भी आगे ही थे। मौलाना शौकतअली, लाला लाजपतराय तथा सरला-देवी चौधरानी आदिने जुलूसका शान्तिके साथ नियन्त्रण किया था। शांति तो भगवान तिलकके साथ ही थी।

देखते ही देखते शीतल चन्दनकी चितापर लोकमान्य के सुपुत्रने अग्नि विधि पूरी की और पद्मासनपर बैठे हुए भगवान तिलकका पञ्चभौतिक शरीर पञ्चभूतोंमें मिल गया। जलाञ्जलिके पश्चात् महात्माजीने और लाला

लाजपतरायने भगवान तिलकको श्रद्धाञ्जलि समर्पित करते हुए शोकोद्‌गार सूचक व्याख्यान दिये।

शोक-साम्राज्य

भगवान तिलकके निधनका समाचार जिस समय जहाँ पहुँचा, उसी समय वहां शोककी घटाएँ छा गयीं। अपने आप ही सारी दूकानें बन्द हो गयीं और सर्वत्र शोक सभाएं की गयीं। पूना तो उनका लीलाधाम ही था। पूनासे जितना घनिष्ठ सम्बन्ध उनका था, पूनाने भी अपने वेताजके सम्राट्के प्रति वैसी ही श्रद्धा प्रदर्शित की। दूकानें, संस्थाएं, कालेज, स्कूल आदि तो वंद हो ही गये समस्त पूनावासी शोकातुरसे दिखायी पड़ने लगे। जिस दिन भगवान तिलकके फूल (अस्थियाँ) पूना आयी उस दिनकी स्थितिका वर्णन यहाँ किया ही नहीं जा सकता।

फूल विमानपर सजाकर रखे गये और पूनाकी प्रत्येक गलीमें उसे घुमाया गया। नंगे सिर पैर जनता विमानके साथ थी। यहाँतक कि पुलिसवाले और अंग्रेज भी उनके सम्मान में पगड़ी-टोपी उतार लेते थे। इसके पहले देशमें किसी नेताके प्रति ऐसा शोक प्रदर्शन नहीं हुआ था।

इसके पहले इस कोटिका सार्वभौमिक नेता भी तो कोई नहीं हुआ था। यथासमय आपके फूल अपार जन समूहकी उपस्थितिमें त्रिवेणी (प्रयाग) में विसर्जित किये गये।

तिलक-गुण-गरिमा

भगवान तिलकके पुण्य प्रयाणके पश्चात् देशके महापुरुषोंने उनके प्रति जो विचार प्रकट किये थे उनमें से कुछ नीचे दिये जा रहे हैं।

म० गांधी—"भारतका प्रेम लोकमान्य तिलकके जीवनका स्वासोच्छ्वास था। उनका धैर्य कभी कम न हुआ। निराशा तो उनको छू तक नहीं गयी थी। उनके अलौकिक गुणोंको धारण करना ही उनका स्मारक है।'

महर्षि मालवीयजी—"उन्होंने देशके लिये असीम आपत्तियाँ उठायीं, क्योंकि भारतका प्रेम ही उनके हृदय-की प्रधान भावना थी। मरते दमतक स्वराज्य ही उनका ध्येय रहा।"

योगी अरविन्द घोष—"उन्होंने बिन्दुका सिन्धु बनाया और टूटी-फूटी अपूर्व सामग्रीसे स्वराज्यकी एक भारी हवेली तैयार की।'

लाला लाजपत राय—"तिलककी मृत्युके कारण भारतका प्रथम श्रेणीका देश-भक्त और अर्वाचीन हिन्दुस्थानका एक स्फूर्तिदाता चल बसा।"

मि० चिन्तामणि—'लोकमान्य कठिनसे कठिन संकट आनेपर भी अपने उद्देश्यसे च्युत नहीं होते थे, देशके लिए उन्होंने अपनी सारी आयु खर्च कर डाली।'

श्रीमती एनीबेसेण्ट—"वे भारतके लिए जिये, लड़े और भारतके लिए ही मरे भी, क्योंकि भारतके लिए उठाये कष्टोंने ही उनका जीवन क्षीण कर दिया।

श्रीनटराजन्—लोकमान्य तिलककी बुद्धि भव्य, साहस निर्भय और जीवन निष्कलंक था।"

श्रीपरांजपे—"तिलकका शत्रु भी इस बातको स्वीकार करेगा कि उनमें बुद्धिमत्ता, स्वार्थत्याग और देश भक्ति भरी थी।'

सर चन्द्रावरकर—"उन्होंने जिस धैर्यसे देशके लिये युद्ध किया, वही धैर्य अन्तमें मृत्यु और रोगके साथ युद्ध करनेमें भी दिखाया, तिलकने अपना नाम इतिहासमें चिरस्मरणीय बना दिया।"

बम्बई टाइम्स—"तिलककी राजनीतिक चढ़ाई बड़ी

भयानक थी। किसी देशके राजनीतिक उथल-पुथलके इतिहासमें उसकी जोड़ी नहीं मिलेगी।"

भगवान-तिलककी अमर वाणियां

यदि तुम स्वतंत्र होना चाहते हो तो स्वतंत्र हो सकते हो और यदि स्वतंत्र होना पसन्द नहीं करते हो तो नीचे गिरोगे और सदा गिरे ही रहोगे। स्वतंत्र होनेके लिए हथियार उठानेकी आवश्यकता नहीं है।

तुम्हें अपने शासकोंका एक बातमें अनुकरण करना चाहिए। जिस प्रकार एक कलेक्टरके चले जानेके साथ दूसरा कलेक्टर आकर काम सँभाल लेता है, उसी प्रकार एक सार्वजनिक काम करनेवालेका स्थान खाली होते ही दूसरोंको आगे बढ़ना चाहिए।

कह दो और जोरके साथ कह दो कि हम स्वराज्य लेकर मानेंगे और मैं दावेके साथ कहता हूँ कि तुम्हारे तैयार होते ही तुम्हें स्वराज्य मिल जायगा। इसमें कुछ भी राज-विद्रोह नहीं है। क्या तुम तैयार हो?

चाहे मेरी निन्दा हो या प्रशंसा, आज मर जाऊँ या नौकरशाही द्वारा कल मारा जाऊँ, मुझे इसकी परवाह

नहीं। किन्तु, मेरा यह सच्चा उद्देश्य—"भारत स्वतंत्र हो" नष्ट नहीं हो सकता।

हे भारत जननी!...मैं मरकर भी यही चाहता हूँ कि तेरी गोदमें फिर आऊँ। जबतक तेरे दुःख दूर न हों, तू स्वतन्त्र न हो, तबतक यहां यह जीवात्मा जन्म ले।

स्वराज्यका अर्थ यही है कि हमें देवता (सम्राट्) के पुजारियों (नौकरशाही) को अलग कर देना है, देवताको रखना है, पर इन पुजारियोंको कोई आवश्यकता नहीं।

स्वराज्य-प्राप्त करना हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और उसे हम प्राप्त करके रहेंगे। जबतक यह भावना हमारे हृदयमें जाग्रत है, तबतक हम वृद्ध नहीं हैं। इस इच्छाको शस्त्र भुला नहीं सकता और हवा उड़ा नहीं सकती। अपने ही घरका प्रबन्ध करना तुम्हारा जन्म सिद्ध अधिकार है। कोई दूसरा उसका अधिकारी तबतक नहीं हो सकता जबतक कि हम नाबालिग या पागल न हों।

स्वराज्य-प्राप्तिके लिए उद्योग करना ईश्वरके प्रति अपना कर्तव्य पालन है।

वेदान्त कहता है कि यदि मनुष्य प्रयत्न करे तो स्वयं ईश्वर हो सकता है। यदि ऐसा है तो फिर तुम किस

तरह कह सकते हो कि हम स्वराज्य नहीं पा सकते ?

यदि स्वराज्यके अधिकार मुसलमानोंको, राजपूतों या अल्पसंख्यक अंत्यज जातिको दे दिये जायँ तो मुझे कुछ परवाह नहीं। क्योंकि उस समय हमारा आपसका मामला रहेगा। इस समय तो केवल इसी बातकी चिन्ता करनी चाहिए कि नौकरशाहीके हाथोंसे किस प्रकार सत्ता आ सकती है।

प्रत्येक मनुष्यको प्रार्थना-उपासनाकी तरह दिनमें एक-दो बार इस बातका भी जप कर लेना चाहिए कि "स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।"

जबतक तुम कष्ट सहनेके लिए तैयार नहीं होगे तबतक तुम्हें कुछ भी नहीं मिल सकता।

स्वराज्य प्राप्त करनेके लिए हमें प्रचण्ड स्वार्थत्याग करनेकी आवश्यकता पड़ेगी। इसके लिए हमें मरनेतककी भी आवश्यकता पड़ेगी। मरनेके दो मार्ग हैं—एक वैध दूसरा अवैध, हमारी लड़ाई वैध है, इसलिए आवश्यकता पड़नेपर हमारी मौत भी वैध होनी चाहिए। हम इसके लिए कभी भी बेकानूनी और अत्याचार प्रेरक उपायोंका अवलम्बन न करेंगे।

अन्धेरी रातसे बिना गुजरे जिस प्रकार सूर्यका प्रकाश नहीं दिखलाई दे सकता, उसी प्रकार आपत्तियों, यंत्रणाओं और लोगोंकी घुड़कियोंको पार किये बिना स्वतंत्रताकी प्राप्ति नहीं हो सकती।

अब विरोध तथा प्रार्थना करनेके दिन गये। अब हमें स्वावलम्बनके तत्वको धारण करके दिखला देना चाहिए कि हम सब प्रकारसे योग्य हैं। यही सफलताकी कुञ्जी है।

स्वराज्यके मार्गपर चलते रहो और बीचमें कोई कुछ कहे तो बिल्कुल मत सुनो। तुम सदा कहनेको तैयार रहो कि अमुक बस्तु हमारी है और हम उसको लेकर हटेंगे।

आपत्तियोंसे डरना मनुष्यताको खो बैठना है। आपत्तियाँ हमें बड़ा लाभ पहुँचाती हैं। कठिनाइयाँ हमारे हृदयमें साहस तथा निर्भीकता उत्पन्न करती हैं।

वह राष्ट्र, वह जाति जिसके मार्गमें कष्ट नहीं है, उन्नति नहीं कर सकती। इसलिए हमें कष्टोंका स्वागत करना चाहिये। कष्टोंसे डरनेवाला आरामका अधिकारी नहीं।

* समाप्त *

जीवनी म

बाबू राजेन्द्रप्रसाद	जे
मीराबाई	हे
महात्मा कबीरदास	स
पं० मोतीलाल नेहरू	
वीर दुर्गादास	स्वामी रामतीर्थ
लाला लाजपत राय	मौलाना आजाद
सरदारवल्लभभाई पटेल	श्री चितरञ्जनदास
कार्ल मार्क्स	ईश्वरचन्द्र विद्यासागर
कमला नेहरू	महात्मा टालस्टाय
स्वामी विवेकानन्द	नेपोलियन बोनापार्ट
कस्तूर बा	श्री जवाहरलाल नेहरू
महर्षि रवीन्द्र	सुभाषचन्द्र बोस
रामकृष्ण परमहंस	वीर अमरसिंह राठौर
महाराणा प्रताप	गुरु गोविन्द सिंह
स्टालिन	स्वामी शङ्कराचार्य
महात्मा गांधी	शिवप्रसाद गुप्त
गणेशशंकर विद्यार्थी	जमनालाल बजाज

हिन्दी पुस्तक एजेन्सी
काशी, कलकत्ता।